❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर॥

वर्ष ३ | गौराब्द ४७२, मास—विष्णु ९, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३० फाल्गुन, सम्वत् २०१४, १४ मार्च १९५८ | संख्या १०

श्रीश्रीशचीसूनुष्टकम्

[श्रीमद्-रघुनाथदास-गोस्वामि-विरचितम्]

हरिर्दृष्ट्वा गोष्ठे मुकुर-गतमात्मानमतुलं स्वमाधुर्यं राधाप्रियतरसखी वाप्तुमभितः ।
अहो गौडे जातः प्रभुरपरगौरैक-तनुभाक् शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥१॥

पुरीदेवस्यान्तः प्रणय मधुना स्नानमधुरो मुहुर्गोविन्दोद्यद्विशद-परिचर्यार्चितपदः ।
स्वरूपस्य प्राणार्बुद-कमल-निराजितमुखः शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥२॥

दधानः कौपीनं तदुपरि बहिर्वस्त्रमरुणं प्रकाण्डो हेमाद्रि द्युतिभिरभितः सेवितनुः ।
मुदा गायन्नुच्चैर्निजमधुर-नामावलिमसौ शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥३॥

अनावेद्यां पूर्वैरपि मुनिगणैर्भक्ति-निपुणैः श्रुतेर्गूढां प्रेमोज्ज्वलरस-फलां भक्तिलतिकाम् ।
कृपालुस्तां गौडे प्रभुरतिकृपाभिः प्रकटयन् शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥४॥

निजस्वे गौडीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान् हरेकृष्णेत्येवं गणन-विधिना कीर्त्तयत भोः ।
इतिप्रायां शिक्षां जनक इव तेभ्यः परिदिशन् शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥५॥

पुरः पश्यन् नीलाचलपतिमुरुप्रेम-निवहैः क्षरन्नेत्राम्भोभिः स्नपित निजदीर्घोज्ज्वल-तनुः ।
सदा तिष्ठन् देशे प्रणयि-गरुडस्तंभ-चरमे शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥६॥
मुदा दन्तैर्दष्टा द्युतिविजित-बन्धुकमधरं करं कृत्वा वामं कटि-निहितमन्यं परिलसन् ।
समुत्थाप्य प्रेम्ना गणित पुलको नृत्यकौतुकी शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥७॥
सरित्तीरारामे विरह-विधुरो गोकुलविधो नदीमन्यां कुर्वन्नयन-जलधाराविततिभिः ।
मुहुर्मुर्च्छां गच्छन्मृतकमिव विश्वं विरचयन् शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥८॥
शचीसूनोरस्याष्टकमिदमभीष्टं विरचयत् सदादैन्योद्रेकादतिविशद-बुद्धिः पठति यः ।
प्रकामं चैतन्यः प्रभुरतिकृपावेशविवशः पृथु प्रेमाम्भोधौ प्रथितरसदे मज्जयति तम् ॥९॥

अनुवाद—

जिस हरि (कृष्ण) ने दर्पणमें अपने अतुलनीय सुन्दर अगोंको निरख कर प्रियतमा सखी श्रीमती राधिकाकी तरह सब तरहसे अपने माधुर्यको स्वयं अनुभव करनेके लिये गौड़ देशमें जन्म लिया था, अहो ! (क्या ही आश्चर्यकी बात है,) जिस प्रभुने श्रीमती राधिकाकी गौर-कान्तिको स्वयं अपने शरीर-की सुन्दर गौर-कान्तिके रूपमें ग्रहण किया था, वे शचीनन्दन श्रीगौरहरि क्या पुनः मेरे नयन-पथ पर मिल सकेंगे ? ॥१॥

जो श्रीईश्वरपुरी गोस्वामीके अन्तःकरणमें विराजित प्रेम-मधुद्वारा स्नात होकर उनके प्रति प्रीति-से युक्त हुए थे, जिनके युगल चरणकमल गोविन्द नामक किसी प्रेमी भक्तकी निर्मल परिचर्या द्वारा सेवित होते थे, तथा जिनका श्रीमुखमण्डल श्रीस्वरूप गोस्वामीके असंख्य प्राण-रूपी कमलके पुष्पोंसे निरन्तर नीराजित होता था, वे शचीनन्दन गौरहरि क्या पुनः मेरे नयन-पथ पर मिल सकेंगे ? ॥२॥

परमब्रह्म परमेश्वर होकर भी जो भक्तोंको शिक्षा प्रदान करनेके लिये स्वयं कौपीन और उसके ऊपर अरुण-रंगका बहिर्वास धारण करते थे, जिनका शरीर अत्यन्त प्रकाण्ड और सुमेरु पर्वतकी कान्ति द्वारा पूर्णरूपेण सेवित था अर्थात् जिनके तपाये हुए सोनेके समान शरीरकी कान्तिको देख कर सुमेरु पर्वत अपनी सुन्दरताका अभिमान छोड़ कर अपनी कान्तिसे (कान्तियुक्त अङ्गसे) जिनके अङ्गकी कान्तिकी सेवा की थी और जो संन्यासीका वेश धारण कर जोर-जोरसे अपने नाम-समूहका आनन्दमें विभोर होकर कीर्त्तन करते हुए भक्त-भावमें भ्रमण किये थे, वे शचीनन्दन गौरहरि क्या पुनः दर्शन देंगे ? ॥३॥

भक्तिमें अतिशय निपुण होने पर भी पूर्व-पूर्व मुनिजन जिनके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान लाभ नहीं कर सके थे, श्रुतियोंने जिन्हें अमूल्य रत्नकी तरह छिपा कर रखा था, जो असीम कृपा द्वारा गौड़देशमें भक्तिलताका—जिसका फल उज्ज्वल प्रेम-रस है—विस्तार कर परम कृपालु (सिद्ध) हुए थे, वे शची-नन्दन गौरहरि क्या पुनः दर्शन देंगे ? ॥४॥

हे मन ! जिन्होंने मेरे स्मरण-पथमें सदा विराज-मान गौड़ीयजनोंको संसारमें आत्मीय मान कर उनके द्वारा 'हरे कृष्ण'—इस हरिनामका संख्या-पूर्वक कीर्त्तन करवाया था और जिन्होंने गौड़ देशीय जन-समुदायको पिताकी तरह प्रिय शिक्षा प्रदान किया था, वे शचीनन्दन गौरहरि क्या पुनः दर्शन देंगे ? ॥५॥

जो प्रणयीगरुड़ स्तंभके पीछे सदा खड़े रह कर सामने (सिंहासन पर विराजमान) नीलाचलपति श्रीश्रीजग-न्नाथदेवको दर्शन कर महाप्रेम-समूह द्वारा अपनी आँखोंसे बहती हुई अश्रुधारासे अपने परम सुन्दर और दीर्घ कलेवरको नहलाया करते थे, वे शचीनन्दन गौरहरि क्या पुनः दृष्टि गोचर होंगे ? ॥६॥

जिन अधरोंकी कान्ति बन्धुक-पुष्पकी लालिमाको भी मात करती थी; अपने उन लाल-लाल अधरोंको दाँतोंसे पकड़ कर और बायें हाथको कमर पर रखकर जो दूसरे दाहिने हाथको उठाकर भिन्न-भिन्न) भङ्गियों से घूमाते हुए अतिशय आनन्दके साथ नृत्य-कौतुकमें मग्न हो जाया करते थे तथा जो माथुर-विरहिणी श्रीमती राधिकाके भावोंसे विभावित होकर असंख्य रोमांच धारण करते थे, वे शचीनन्दन गौरहरि क्या पुनः दृष्टिगोचर होंगे ? ॥७॥

जिन्होंने नदीके तटवर्ती उपवनमें गोकुल-चन्द्र—श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल होकर अपनी अविरल निकलती हुई अश्रुधाराओंसे एक दूसरी सरिताका निर्माण किया था, तथा बार-बार मूर्च्छित होकर वहाँ उपस्थित जन-समूहको मृतकके समान अचेतन बना दिया था, वे शचीनन्दन गौरहरि क्या पुनः दर्शन देंगे ? ॥८॥

जो व्यक्ति शुद्ध अन्तःकरणसे अतिशय दीनता-पूर्वक अपने अभीष्टप्रद श्रीशचीनन्दनके इस अष्टकका पाठ करते हैं, उनको शचीनन्दन कृपा करके श्रीकृष्ण सम्बन्धी रसास्वादनरूप अगाध प्रेम-समुद्रमें निमज्जित कर देते हैं ॥९॥

सगुण उपासना

भगवान्‌की परा और अपरा प्रकृतियाँ, अपराका परिचय

परा और अपरा—ये भगवान्‌की दो प्रकार की प्रकृतियाँ हैं। भगवान् स्वयं अप्राकृत तत्त्व हैं। वे प्रकृतिके अधीन नहीं हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पंचतत्त्व; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध-ये पाँच तन्मात्राएँ; चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचा—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ—पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार और अव्यक्त—ये सब मिला कर २४ तत्त्व हैं। ये सभी अपरा प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण प्राकृत हैं।

परा प्रकृति; बन्धन और मुक्ति

भगवान्‌की परा प्रकृतिका नाम जीव है। जब यह परा प्रकृति अपरा प्रकृतिसे गठबंधन कर उसे अपना भोग्य समझने लगती है, तभी वह स्थूल और सूक्ष्म -इन दो प्राकृतिक उपाधियोंसे बँधकर बद्धजीव कहलाती हैं। और अप्राकृत भगवान्‌के साथ अपना अप्राकृत सम्बन्ध उपलब्धि कर भगवान्‌को अप्राकृत भोक्ता और अपनेको अप्राकृत भोग्य अर्थात् भगवान्‌को सेव्य और अपनेको सेवक जान लेना ही मुक्ति है। प्राकृत वस्तु और प्रकृतिमें अन्तर है—प्राकृत वस्तुमें त्रिगुणोंकी स्थिति होती है और प्रकृतिमें तीनों गुणों की साम्यावस्था होती है।

त्रिगुणोंके अधीनस्थ जीवोंकी उपासना अशुद्ध होती है

प्राकृत अहङ्कारके वशीभूत बद्धजीव अपनेको प्राकृत वस्तुओंका भोक्ता मानता है। ऐसी दशामें जीव अपनेको त्रिगुणात्मक अभिमान भी करता है। त्रिगुणाभिमानी जीव गुणोंसे अतीत किसी अप्राकृत वस्तु या तत्त्वकी उपलब्धि करनेमें असमर्थ होता है। अतः वह उपास्य वस्तुको भी गुणोंके अन्तर्गत मानने लगता है। यही कारण है कि उसकी उपासना भी शुद्ध नहीं होती। ऐसी उपासनाको गौण-उपासना ही कहा जा सकता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके द्वारा जीव जड़ विषयोंके भोगमें प्रवृत्त होता है। परन्तु इन दोनों प्राकृत शरीरोंसे मुक्त होनेपर आत्मोपलब्धि कर

शुद्ध जीव अप्राकृत उपास्य वस्तु—भगवान्‌की उपासना करने लगता है। ऐसी उपासना अप्राकृत उपासना या मुख्य उपासना कहलाती है।

भिन्न-भिन्न उपास्य क्यों ?

त्रिगुणात्मक जगत्‌में अविमिश्र गुणोंका सम्बन्ध प्राकृत गुणोंके साथ होता है। इसीलिये गुणोंके मिश्रण से उपास्य वस्तुकी अनेकता होती है। शुद्धसत्त्व-गुणका जब दूसरे-दूसरे गुणोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता, तो उसे निर्गुण कहा जाता है। गुणोंकी साम्यावस्था रूप प्रकृतिको निर्गुण न कह कर गुण-वैचित्र्यहीना कहना ही सङ्गत है। नारायण ही निर्गुण उपास्य वस्तु हैं। 'हरि र्हि निर्गुणः साक्षात्' —आदि शास्त्रीय प्रमाणोंका अनुशीलन करनेसे उपरोक्त कथनकी सत्यता उपलब्धि की जा सकती है। सत्त्वगुणके साथ रजोगुणके उपासक अपनेको सौर; सत्त्व और तम मिश्रगुणके उपासक—अपनेको गाणपत्य; रज और तम मिश्रगुणके उपासक अपनेको शाक्त, और केवल तमोगुणके उपासक अपनेको शैव बतलाकर निर्गुण अभिमान करते हैं। धर्मकी कामना करने वाले सौर, अर्थकी कामनावाले गाणपत्य, काम की इच्छा करनेवाले शाक्त और मोक्षकी वासना वाले शैव अपने-अपनेको सत्त्वगुणका उपासक मानते हैं। परन्तु वास्तवमें ये सब सगुण उपासक हैं।

पंचोपासक-वैष्णवोंकी उपासना सगुण होती है

पंचोपासकोंके अन्तर्गत कल्पित विष्णुके उपासक यद्यपि अपनेको निर्गुण या निष्काम उपासक मानते हैं, तथापि उनकी उपासना सगुण होती है। यों तो केवल रजोगुणके उपासक भी अपनेको निर्गुण ब्राह्मण आदि मानते हैं, परन्तु उनकी सगुण उपासनामें आसक्ति रहनेके कारण वे अप्राकृत उपासनाका आदर करनेमें असमर्थ होते हैं। इसीलिये गीतामें स्वयं भगवान् कहते हैं—

येऽप्यन्यदेवताभक्ताः यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय भजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(गीता० ९।२३)

सकाम ब्रह्म-उपासना भी सगुण-उपासना है

कामनाओंसे युक्त होकर भिन्न-भिन्न देवताओंकी जो सकाम उपासना होती है, वे सभी सगुणोपासना हैं। शुद्ध जीवात्मामें नश्वर भोगोंकी स्पृहा नहीं होती। परन्तु बद्धजीव ही नश्वर भोगोंकी प्राप्तिके लिये भिन्न भिन्न देवताओंकी उपासना करता है। अतः यदि बद्धजीव कुछ समयके लिये किसी-अनित्य कामनाकी पूर्तिके लिये निर्गुण ब्रह्मकी किसी कल्पित मूर्त्तिकी सेवा अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंकी सहायतासे करें भी, तो उसकी वैसी सेवा—आत्माकी नित्य सेवा नहीं होती।

भक्ति ही नित्य और निर्गुण उपासना है

जब बाह्य विषयोंकी आसक्ति दूर हो जाती है, समस्त प्रकारकी नश्वर भोगकी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा मनःकल्पित नश्वर भाव-समूह दूर हो जाते हैं, उस समय जीव निर्गुण, नित्य और सच्चिदानन्द भगवान्‌का रूप दर्शन करता है। नित्य जीवात्मा नित्य सेवन-वृत्ति द्वारा नित्यरूप भगवान्‌की नित्य उपासना प्राप्त हो जाता है—यही उपासना नित्य और निर्गुण उपासना है। ऐसी उपासना ही—भक्ति है। गौण उपासनामें आत्माकी नित्यवृत्ति आच्छादित रहती है। इसलिये ऐसी उपासनाको निर्गुण अथवा नित्य-भक्ति नहीं कहा जा सकता है। भगवान्‌का नित्यरूप प्रकृति द्वारा उत्पन्न जड़-पदार्थोंकी तरह अनित्य नहीं होता—बल्कि सम्पूर्ण चिदानन्दमय होता है। चिदानन्दमय नित्य-सेवक ही नित्य-चिदानन्दमय भगवान्‌की नित्यसेवा कर सकते हैं। जड़ जगत्‌के नश्वर गुणोंसे रहित होनेपर ही उपासना नित्य और निर्गुण होती है। 'निर्गुण'—शब्दसे कोई यह नहीं समझ ले कि चिन्मय वस्तुमें भी चिन्मय और

नित्य गुणोंका अभाव होता है। बल्कि 'निर्गुण'-शब्दसे केवल प्राकृत नश्वर गुणोंका ही निषेध समझना चाहिए। पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर तथा मन—ये जड़ जगत्के भोक्ता हो सकते हैं—परन्तु देही—जीवात्मा स्वयं उपाधिरहित होता है। वह सर्वदा नित्यकाल नित्या-भक्तिमें प्रतिष्ठित होता है। अतः नित्यवस्तुकी नित्य उपासना नित्य-सेवक जीवात्माके द्वारा ही संभव है। जिस समय त्रिगुणात्मक अभिमान जीवको छोड़ देता है, उस समय वे अधोक्षज भगवान्की अहैतुकी और बाधारहित सेवाके अधिकारी होते हैं।

सगुण उपासना

सगुण उपासनामें नश्वर काम अर्थात् अचित् भोग-वासनाएँ प्रबल होती है। ऐसी उपासना स्थूल और सूक्ष्म उपाधियों द्वारा परिचालित होती है। जिस उपासनामें अनात्म शरीर और मनमें आत्मबुद्धि होने से चिन्मय-ब्रह्मकी जो कल्पित मूर्त्तियाँ सेवित होती हैं, वे मुक्तावस्थामें कालके प्रभावसे ध्वंस हो जाती हैं और उपास्य-उपासक अभेद हो पड़ते हैं—ऐसी उपासना अवैध है। इस प्रकारकी उपासनाको अवैध जानकर जिस समय अजामिलने अपने पुत्रका नाम उच्चारण किया, भगवान् उसी समय उसकी स्मृति-पट पर उदित हो गये। साथ-ही-साथ अजामिलकी अन्यान्य देवताओंके प्रति उपास्य-बुद्धि दूर हो गयी, नश्वर भोगकी सारी वासनाएँ नष्ट हो गयीं और उनके स्थान पर निर्मल, निर्गुण और नित्या-भगवद्-भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ। वे सम्पूर्ण रूपसे संसारका मोह परित्याग करके भगवद्भक्तिमें स्थित हो गये। तात्पर्य यह कि जबतक नश्वर भोग-वासनाएँ प्रबल रहती हैं, तबतक भिन्न भिन्न देवताओंकी उपासनाएँ सृष्ट होती रहती हैं। अतः अनित्य भोगवासनाओंके दूर होनेपर इतर देवताओंके प्रति उपास्य बुद्धि भी दूर हो जाती है। उस समय केवल भगवद्भक्ति ही बच रहती है, जो आत्माकी नित्य वृत्ति है।

निर्गुण उपासना कहनेसे केवल जड़ उपासनाका निषेध समझना चाहिए। जड़ीय उपासना दूर होनेपर उस रिक्त स्थान पर उपासनारहित किसी निर्विशेष भावका आधिपत्य होगा ही—ऐसी बात नहीं है। समस्त प्रकारके चिन्तनीय आकारोंकी धारणाका त्याग करनेसे ही निर्गुण ब्रह्मकी उपासना नहीं हो जाती। क्योंकि साकार और निराकार—दोनों ही जड़ीय धर्म हैं। 'जड़-रहित चिज्जगत्में आकार नहीं है, वहाँ उपासक और उपास्यका भेद नहीं रहनेसे नित्य उपासनाका अभाव होता है'—इन सिद्धान्तोंको भक्तियोग में अवस्थित वैयासिक गुरुवर्ग अनुमोदन नहीं करते। अनन्त शक्तिमान सर्वेश्वर भगवान् केवल निराकार है, निर्विशेष हैं, वे अपने सच्चिदानन्द रूपमें नित्य-चिद्विलासमय होकर वैकुंठ और गोलोक आदि अपने नित्य धामोंमें नित्य विराजमान नहीं रह सकते हैं, उनकी नित्य उपासना नहीं हो सकती—ऐसी कल्पना केवल निरीश्वर नास्तिक समाजमें ही आदृत हो सकती है। भगवद्भक्तजन इसके विपरीत भगवान्को नित्यचिद्विलासमय, नित्य रूपवान, सर्वशक्तिमान, प्रकृतिसे अतीत अनन्त चिन्मय गुणोंका आधार मान कर उनकी नित्य उपासनामें तत्पर होते हैं।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

साधु-वृत्ति

साधु दो प्रकारके होते हैं—गृहस्थ और गृहत्यागी। अतः इनकी वृत्ति भी दो प्रकारकी होती है। अर्थात् गृहस्थ वैष्णवोंकी वृत्ति और गृहत्यागी वैष्णवों की वृत्ति। हम अलग-अलग इन दोनों प्रकारकी वृत्तियोंका विवेचन करेंगे। इन दोनोंके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी प्रवृत्तियाँ हैं जो दोनों प्रकारके साधुओंके लिये उपयोगी होती हैं, इनका वर्णन पृथक् रूपमें किया जायगा।

'वृत्ति'—शब्दके दो अर्थ हैं; पहला 'प्रवृत्ति' और दूसरा 'जीवन'। स्वभावको ही प्रवृत्ति कहा जाता है। स्वभावसे उत्पन्न प्रवृत्तिके अनुरूप ही जीवका धर्म होता है—

प्रायः स्वभाव-विहितो नृणां धर्मो युगे-युगे।
वेद-दृग्भिः स्मृतो राजन् प्रेत्य चेह च शर्मकृत्॥
(श्रीमद्भा० ७।११।३१)

वेद-दर्शी ऋषि-मुनियोंने युग-युगमें प्रायः मनुष्यों के स्वभावके अनुसार धर्मकी व्यवस्था की है। वही धर्म मनुष्योंके लिये इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी होता है। जो स्वाभाविक वृत्तिका आश्रय लेकर अपने स्वधर्मका पालन करता है, वह धीरे-धीरे इन स्वाभाविक कर्मोंसे ऊपर उठ कर निर्गुण कृष्ण-भक्ति प्राप्त कर लेता है। अन्यथा वह स्वधर्मसे भ्रष्ट होकर क्रमोन्नति नहीं कर सकता। श्रीमद्भागवतकी यही शिक्षा है—

वृत्त्या स्वभाव-कृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत्।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात्॥
(श्रीमद्भा० ७।११।३२)

यहाँ 'निर्गुणता' शब्दसे भक्तिको लक्ष्य किया गया है। क्योंकि श्रीमद्भागवतमें 'निर्गुण' शब्दका व्यवहार प्राय भक्तिके लिये ही हुआ है—

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञान-विज्ञान-संभवम्।
गुण संगं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः॥
(श्रीमद्भा० ११।२५।३३)

'निर्गुणं मदपाश्रयं'—इस भगवद्वाक्यसे यह स्थिर होता है कि भक्ति द्वारा जो कुछ होता है, वह सब कुछ निर्गुण होता है। यथा—

रजस्तमश्चाभिजयेत् सत्त्व—संसेवया मुनिः।
सत्त्वञ्चाभिजयेत युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः॥
(श्रीमद्भा० ११।२५।३४-३५)

निर्गुण अवस्था प्राप्त होनेका उपाय

अतएव सात्त्विक द्रव्य, सात्त्विककाल, सात्त्विक क्रिया, सात्त्विक देश आदिमें भगवद्भक्ति युक्त करके जीवन-यापन करनेसे मनुष्य निर्गुण हो सकता है। सात्त्विक प्रवृत्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है। और उस अधिकारमें स्थित होकर ही जीव क्रमशः निर्गुण हुआ करते हैं। श्रीमद्भागवतमें मनुष्यकी साधारण सात्त्विक प्रवृत्तिका उल्लेख किया गया है। ये सात्त्विक प्रवृत्तियाँ ३० प्रकारकी होती हैं—सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, मनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओंकी सेवा, धीरे-धीरे संसारिक भोगोंकी चेष्टासे निवृत्ति, मनुष्यके अभिमानपूर्ण प्रयत्नोंका फल उलटा ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्म-चिन्तन अर्थात् आत्मा और अनात्माका विवेक, प्राणियोंमें अन्नआदिका यथा-योग्य विभाजन, समस्त लोगोंमें भगवत्-सम्बन्धी भाव, सन्तोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला आदिका श्रवण, कीर्तन, स्मरण उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म-समर्पण। यह तीस प्रकारका आचरण सभी मनुष्योंका परम-धर्म है।

इन उपर्युक्त ३० प्रवृत्तियोंके तारतम्यके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र—चार प्रकारके वर्ण- और संन्यास, वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य और गृहस्थ—चार प्रकारके आश्रम हुए हैं । जैसे श्रीमद्भागवत (११।१८।४२) में कहा गया है—

भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा, तप ईक्षा वनौकसः ।
गृहिणो भूत रक्षेज्या, द्विजस्याचार्य-सेवनम् ॥

शम और अहिंसा—संन्यासीका धर्म है, तपस्या और भगवद्भाव वानप्रस्थका धर्म है, प्राणियोंकी रक्षा और यज्ञ-याग—गृहस्थका धर्म है, और गुरु-सेवा ब्रह्मचारीका धर्म है। वर्णोंके धर्म इस प्रकार हैं—अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान, लेना, दान देना—यह ब्राह्मणका कर्म है । प्रजा-पालनमें दण्ड और शुल्कादि द्वारा जीविका निर्वाह-यह क्षत्रियकी वृत्ति है, कृषि, गोपालन, वाणिज्य आदि यह वैश्यकी वृत्ति है और द्विजातियोंकी सेवा करना ही शूद्रोंकी वृत्ति है। वर्ण-सङ्करोंके लिये उसके कुलमें प्रचलित वृत्ति ही जीविका निर्वाहका उपाय है।

शरीर और मनको भजन के अनुकूल करने का नियम

इन सब भागवतीय सिद्धान्तोंका तात्पर्य यह है कि भगवद्भजन ही इस संसारमें मनुष्योंका एक मात्र उद्देश्य है। परन्तु जबतक स्थूल और लिङ्ग-शरीरको भगवद्भजनके अनुकूल न कर लिया जाय, तबतक भजन संभव नहीं। अतः सबसे पहला मनुष्यका कर्त्तव्य यह है कि वह अपने इन दोनों बाह्य शरीरोंको भजनके अनुकूल बना ले। स्थूल शरीरकी रक्षा के लिये घर-द्वार, अन्न-जल और दूसरी कुछ वस्तुओंका संग्रह आवश्यक होता है। सूक्ष्म शरीरकी उन्नतिके लिये सद् विद्या और सद् वृत्तियोंकी आवश्यकता होती है। अतः एक ऐसा उपाय अवलम्बन करना पड़ेगा, जिससे इन दोनोंकी आवश्यकता भी पूरी हो जाय और हमारा भगवद्भजन भी होता रहे। इसलिये इन दोनों देहोंको सम्पूर्णरूपसे भक्तिके अनुकूल कर उनको निर्गुण स्थितिमें पहुँचा देने पर यह कार्य सरल हो सकता है। किन्तु प्रश्न है—इस स्थितिमें उन्हें लाया जाय तो कैसे ? एक उपाय है। जीवोंमें उसके अनादि कर्मफलसे जो स्वभाव और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, उनमें सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंका मिश्रभाव होता है। सबसे पहले इन तीनोंमें से सत्त्वको खूब बढ़ाओ और उससे रज और तमको दबा कर सत्त्वको ही प्रधान गुण बना लो। अब तुममें सत्त्व गुणकी प्रधानता हो जायगी। फिर सत्त्वको सब तरहसे भक्तिके अधीन कर लेने पर वही सत्त्व निर्गुणके रूपमें बदल जाता है। अर्थात् सत्त्व गुणमें भक्तियुक्त होने पर वही निर्गुण कहलाता है। इस क्रमका अवलम्बन करनेसे देह और मन क्रमशः भगवद्भजन के अनुकूल हो जाते हैं।

वर्णाश्रमधर्मकी आवश्यकता

मनुष्य जब तक अपने स्वभावके अनुसार दोष और गुणमें स्थित होता है, उसका पहला कर्त्तव्य वर्णाश्रम-धर्मका पालन करना है। वर्णाश्रमधर्मका मूल उद्देश्य यह है कि मनुष्य क्रमशः वर्णाश्रम धर्म पालन करते २ निर्गुण अवस्था प्राप्त कर भगवद्भजन के लिये उपयुक्त बने। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने सनातनको निम्नलिखित श्रीमद्भागवतका (११।५।२।३) श्लोक बतलाया था—

मुख बाहुरु-पादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥
य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥

वर्ण और आश्रमका उद्देश्य क्रमोन्नतिके साथ भगवद्भजन तक पहुंचना है। यदि वर्णाश्रम धर्मका सुष्ठु रूपसे पालन करके भी भगवद्भजनमें रुचि नहीं हुई तो वर्णाश्रम-धर्मसे च्युत हो जाना पड़ता है।

जब राय रामानन्दने साध्य और साधनके विषयमें महाप्रभुजीको यह श्लोक—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोष-कारणम् ॥
(वि० पु० ३ ८ ९)

सुनाया, तब महाप्रभुने इसे बाह्य विधि बतलाकर इससेभी उच्च सिद्धान्त कहने के लिये आदेश दिया। महाप्रभुका तात्पर्य यह है कि स्थूल-लिंग शरीरोंको नियमित करनेके लिये ही वर्णाश्रमधर्मकी आवश्यकता है। यदि कोई मनुष्य वर्णाश्रम-धर्मकी विधियोंसे ही सन्तुष्ट रहकर भगवद्भजन न करे तो उसका वर्णाश्रम-धर्मका पालन करना व्यर्थ ही हुआ। अतः बद्ध-जीवोंके लिये वर्णाश्रमकी विधियाँ कुछ हद तक भजन के अनुकूल होने पर भी बाह्य साधन ही है—चरम और सर्वश्रेष्ठ साधन नहीं है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
(श्रीमद्भागवत १।२।८)

शरीर-त्याग होने तक वर्णाश्रम-धर्म पालनीय है

इसके द्वारा कोई ऐसा न समझ ले कि श्रीमन्महाप्रभुने वर्णाश्रमधर्मका त्याग करनेका उपदेश दिया है। यदि ऐसा ही होता तो वे स्वयं गृहस्थ-अवस्था तक गार्हस्थ्य-धर्मका और संन्यास अवस्थामें संन्यास-धर्मका सम्पूर्णरूपसे पालन करनेकी लीला द्वारा जीवों को ऐसी शिक्षा न दिये होते। जबतक शरीर है तबतक वर्णाश्रम धर्म अवश्य-अवश्य पालनीय है। परन्तु उसे भक्तिके सम्पूर्ण अधीन रखकर पालन करो। वर्णाश्रम धर्म परोधर्मकी भित्ति-स्वरूप हैं। परोधर्मकी परिपक्वता होने पर उपेय प्राप्तिके साथ-साथ इन उपेयों (वर्णाश्रमकी विधियों) के प्रति अनादरका भाव पैदा हो जाता है और देह-त्यागके साथ बची-खुची विधियाँ भी सम्पूर्ण रूपसे छूट जाती हैं।

रामानन्दरायद्वारा कहे गये श्लोकके दूसरे चरण—'विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोष-कारणम्।' का तात्पर्य यह है कि संसारी जीवोंके लिये वर्णाश्रम धर्म ही एकमात्र ऐसी जीवन-निर्वाहोपयोगी व्यवस्था है, जो उनके भगवद्भजनके लिये अनुकूल है। इसके अतिरिक्त ऐसी कोई भी दूसरी व्यवस्था नहीं है जो हरिभजनके अनुकूल भी हो और जिससे जीविका-निर्वाह भी सरलतासे हो सके। इसीलिये इसे भक्त-जीवनका एकमात्र पथ कहा जा सकता है।

वर्ण-विभाग जन्मके अनुसार नहीं—स्वभाव के अनुसार होता है।

मनुष्य साधारणतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सङ्कर और अन्त्यज—इन कई एक भागोंमें विभक्त है। किसी-किसी देशमें वर्णाश्रम धर्म स्पष्टरूपसे नहीं होने पर भी अँकुर रूपमें अवश्य है। जिसका जैसा स्वभाव होता है, उसकी वैसी ही वृत्ति होती है और और वैसाही जीविकोपार्जनका उपाय भी होता है। दूसरोंकी वृत्ति और जीविकोपायका अवलम्बन करने मे अहित होता है। यहाँ तक कि हरिभजनके मार्गमें भी बड़ी-बड़ी अड़चनें आ खड़ी होती हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि किसी व्यक्तिका वर्ण कैसे निरूपण किया जाय? क्योंकि जबतक उसका वर्ण ठीक नहीं होता तबतक उसका धर्म तथा उसके जीविकोपार्जन की पद्धति आदि कैसे ठीक हो सकती है? आजकल धारणतः जन्मके अनुसार वर्ण निरूपित होता है। परन्तु यह शास्त्रीय और युक्तिसंगत पद्धति नहीं। बल्कि व्यक्तिके स्वभावके अनुसार ही वर्ण-निश्चित होना उचित है। श्रीमद्भागवतमें इसी पद्धतिका स्पष्ट शब्दोंमें प्रतिपादन किया गया है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥
(श्रीमद्भागवत ७-११-३५)

अर्थात् जिस पुरुषके वर्णको बतलानेवाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णमें भी मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये।

श्रीधर स्वामी उक्त श्लोककी टीकामें लिखते हैं—'शमादिभिरेव ब्राह्मणादि-व्यवहारो मुख्यः, न जातिमात्रादित्याह यस्येति। यद्-यदि अयन्त्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षण-निमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत्, न तु जाति-निमित्तेनेत्यर्थः।'

इस प्रकार सनातन वर्णाश्रम-धर्म सदा पालनीय है। यह साधारणतः भक्तिके लिये अनुकूल और उपयोगी होता है। चारों वर्ण और संकर वर्ण--सभी अपने-अपने सात्त्विक स्वभावको उन्नत करनेका प्रयत्न करेंगे। पूर्व-सुकृतिसे अन्त्यज वर्णवाले मनुष्यका सौभाग्य उदित होने पर वह शूद्रवर्णके उपयोगी आचरणोंका पालन करता हुआ अपने सत्त्वगुणको उन्नत करेगा। सबको चाहिए कि वे सत्सङ्ग द्वारा जीवनमें भक्तिको प्रधानता देकर उन्नत सत्त्वगुणको निर्गुण अवस्थामें पलट दें। सनातन धर्मका यही क्रम-विकाश है। भक्ति रहने पर सभी वर्णोंके लोग ब्राह्मणसे भी श्रेष्ठ हैं और भक्तिके अभावमें ब्राह्मण-जीवन भी व्यर्थ है।

हमें अपने पूर्व-महाजनोंके आचरणोंको ग्रहण करना चाहिए। परन्तु एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है, वह यह कि आजतक तो बहुतसे ऋषि-महर्षि आदि आचार्य हो गये हैं। फिर किनका आचरण ग्रहण किया जाय? किसी महात्माका कथन है कि महाजनोंके पथ पर पूर्वापर (आगे पीछे) का विचार कर चलना चाहिए।' तात्पर्य यह कि पहलेके महाजनों और पिछले महाजनोंका विचार कर पिछले महाजनों के आचारोंका अवलम्बन करना उचित है। जैसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावसे पहले अनेक ऋषि-महर्षि आदि महाजन हुए हैं, जिनके आचार हमारे लिये पूर्व महाजनोंके आचार हैं। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावसे लेकर अबतकके महात्माओंके आचार ही पिछले महाजनोंके आचार हैं। अतः पिछले आचार ही श्रेष्ठ और पालनीय हैं। श्रीमन्महाप्रभु और उनके अनुगत भक्तोंके आचार--जिनका उन्होंने जीव-शिक्षाके लिये आचरण किया है--जीवोंके लिये सम्पूर्ण रूपसे पालनीय हैं।

गृहस्थोंके व्यवहार और उनकी वृत्तियाँ

सद्-वृत्ति क्या है?--यह अच्छी तरह समझने के लिये श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु और उनके भक्तोंके आचरण हमारे आदर्श हैं। अतः उनके आचारोंको संक्षेपमें नीचे लिखा जा रहा है--

(क) विवाह और कुटुम्ब-भरणके सम्बन्ध में—

गृहस्थको गृहिणीके साथ भजनके अनुकूल संसार-धर्मका पालन करते हुए भगवद्भजन करना चाहिए। संसार-धर्मका पालन करनेसे जो पुत्र और कन्या पैदा हों, उन सबको कृष्णका दास-दासी समझ कर पालन-पोषण-करना चाहिए। परन्तु कुटुम्ब-भरणके लिये तो अर्थकी आवश्यकता होती है; इसके लिये धर्म या न्याय-संगत उपायोंसे ही यथा-योग्य अर्थ-संग्रह करना चाहिए।

(ख) विद्या-शिक्षाके सम्बन्ध में—

उपयुक्त उम्रमें विद्या अध्ययन करना आवश्यक है; परन्तु बहिर्मुख शास्त्रों अथवा ग्रन्थोंका अध्ययन नहीं करना चाहिए। विद्याका उद्देश्य—कृष्ण-भजनमें प्रवेश करना है, न कि धन और प्रतिष्ठा अर्जन करना।

(ग) अतिथि-सेवाके सम्बन्धमें—

अतिथि-सेवा गृहस्थका प्रधान कर्त्तव्य है। निष्कपट चित्तसे यथाशक्ति अतिथियोंका सत्कार करना चाहिए। अतिथि दो प्रकारके होते हैं। साधारण अतिथि और भक्त अतिथि। इन दोनोंका भलीभाँति पार्थक्य जानकर उनके उपयुक्त साधारण अतिथियोंका सत्कार और भक्तोंकी प्रीतिपूर्वक सेवा करनी चाहिए।

(घ) सद्गुणोंके सम्बन्धमें—

गृहस्थ व्यक्ति सबके साथ सरल व्यवहार करेंगे। किसीके साथ कपट व्यवहार न करेंगे। इस प्रकार सबके साथ व्यवहार करते हुए सदा भगवान्का भजन करेंगे।

गुरुजनोंकी सेवा करना उनका प्रधान कर्त्तव्य है। इससे भगवान् संतुष्ट रहते हैं। उन्हें वैराग्य-धर्मकी शिक्षा लेनी चाहिए। परन्तु साधुओंका बाना पहन कर उन्हें कपट वैराग्यका आचरण नहीं करना

चाहिए। वैराग्य सच्चा होना चाहिए, दिखावटी नहीं। अन्तरमें भक्तिके प्रति पूर्ण निष्ठा रखते हुए जीवन-धारणके लिये उपयोगी यथायोग्य विषयोंको अनासक्त होकर भोग करो। अन्तरमें भक्तिका निर्मल स्रोत बहानेकी चेष्टा करो; ऊपरसे लौकिक व्यवहारोंका आचरण करते रहो। ऐसा होनेसे कुछ ही दिनोंमें भगवान्‌की कृपा पायी जा सकती है।

परोपकारी होना गृहस्थोंके लिये एक आवश्यक गुण है। संसारमें समस्त प्रकारके उपकारोंमें जीवोंको कृष्ण-भक्तिमें प्रवृत्त कराना ही सर्वश्रेष्ठ उपकार है। गृहस्थ व्यक्ति स्वयं कृष्णभक्तिका आचरण करेंगे और दूसरोंको भी इस मार्गपर लानेका प्रयत्न करेंगे। इस मार्ग पर लानेके लिये प्रधान उपाय है—उन्हें निरन्तर कृष्ण-नामका कीर्त्तन करनेके लिये उपदेश देना। कुसंगसे सर्वदा बचो। शुद्ध भक्तोंके सङ्गमें भगवान्‌के नाम रूप, गुण, लीलाका श्रवण और कीर्त्तन करो। परन्तु अभक्तोंके सङ्गमें कीर्त्तन आदि द्वारा भक्तिकी हानि होती है। संसार-बंधन और भी दृढ़ होता जाता है।

(ङ) उन्हें भगवान्‌की इच्छा पर सम्पूर्ण निर्भर रहना चाहिए।

(च) विशेष सावधानीके साथ अवैष्णवों, स्त्रियों और स्त्रैण व्यक्तियोंका सङ्ग त्याग करना चाहिए।

(छ) सद्गृहस्थ प्रतिदिन एक लाख 'हरिनाम' करेंगे। ऐसे सद्गृहस्थोंके घर पर ही शुद्ध वैष्णवजन प्रसाद सेवा करेंगे।

(ज) शुद्ध वैष्णवों और स्मार्त्तका भेद जानकर शुद्ध वैष्णवोंकी प्रीतिपूर्वक सेवा करनी चाहिये। दोनोंके ऊपरी कर्मोंमें भेद नहीं होता, भेद होता है—दोनोंकी आंतरिक निष्ठाओंमें। अतः दोनोंको एक श्रेणीमें माननेसे अधोगति होती है। इसलिये इसे ठीक-ठीक समझ कर उनके प्रति यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए। (क्रमशः)

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

कृष्णके वियोगमें यशोदा

जसोदा नैनन बरसत नीरा ॥

जब जब सुरति आत लालन की, होत बेहाल अधीरा।
मुख ते कछु ना परत बखाने, फिर फिर धुनत सरीरा ॥

पूछत ग्वाल-बाल सौं डोले, कहुँ देखे यदुबीरा।
जेहि देखे निशि-द्यौस जियत हूँ, कहँ डोलत वे हीरा ॥

घायल की गति घायल जाने, कोई न जाने पीरा।
'शची' श्याम जसुमति अति व्याकुल, कौन बँधावे धीरा ॥

सुशीलचन्द्र त्रिपाठी, एम. ए; साहित्यरत्न

गीताकी वाणी

उपसंहार

करुणावरुणालय भगवान्‌ने अर्जुनको निमित्त बनाकर गीताशास्त्रमें जो उपदेश दिये हैं, उनका अधिकारी कौन है—बतलाते हैं :—

जो लोग ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य अपनी पाण्डित्य प्रतिभाके बलसे अथवा अनेकानेक भाषा-टीकाओंके सहारे गीताका यथार्थ रहस्य समझ सकता है—वे भूल करते हैं। उनकी ऐसी धारणा सम्पूर्ण भ्रमात्मक है। जिनको आर्य धर्ममें विश्वास नहीं है, जिनके हृदयमें भगवद्भक्तिका अभाव है, जो सच्चिदानन्द विग्रह स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मरणशील मानव समझते हैं, वे गीतापाठके अनाधिकारी हैं। जो तन-मन और वचन सब प्रकारसे गुरुकी सेवा नहीं करते, तपस्या द्वारा जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो पाया है, अथवा जो हरि-गुरु वैष्णवोंके आनुगत्यमें रहकर परतत्त्व सम्बन्धी श्रवण आदि नहीं करना चाहते, वे गीताका एक बार नहीं, सैकड़ों बार पाठ करके भी अथवा सम्पूर्ण गीताको कण्ठस्थ करके भी उसका यथार्थ तात्पर्य उपलब्धि करनेमें असमर्थ होते हैं।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

(श्वेताश्वतर)

जिसकी परम पुरुष श्रीभगवानके चरणोंमें जैसी पराभक्ति विद्यमान है, गुरुदेवके प्रति भी वैसी ही पराभक्ति विद्यमान है, केवल उसके निकट ही सम्पूर्ण शास्त्रोंका तात्पर्य प्रकाशित होता है। अतएव जो सुयोग्य वक्ता उपरोक्त प्रकारके सुयोग्य पात्रोंके प्रति गीताका उपदेश करते हैं, वे भगवान्‌की पराभक्ति लाभकर अन्तमें भगवान्‌के चरण-कमलोंको प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। गीता १८।५८ श्लोकके 'एवं' और 'असंशय'—शब्दोंसे भगवान्‌की उक्तिकी दृढ़ता परिलक्षित होती है। अर्थात् जो भगवान्‌के उपदेशोंको ठीक-ठीक रूपमें पालन करेंगे, वे भगवान्‌को प्राप्त होवेंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। ऐसे भक्तोंसे बढ़कर पृथ्वी भरमें भगवान्‌का प्रिय दूसरा कोई नहीं है अथवा भविष्यमें भी कोई नहीं होगा। जो व्यक्ति इस गीताशास्त्रको पढ़ेगा या दूसरोंको पढ़ावेगा, उसके द्वारा भी भगवान् ज्ञान-यज्ञ द्वारा पूजित होते हैं—ऐसा भगवान्‌का मत है।

जो लोग श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टिरहित होकर गीताशास्त्रका श्रवण करते हैं, वे संसार-बन्धनसे मुक्त होकर पुण्यवानोंको प्राप्त होनेवाले श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होते हैं।

उपसंहारमें गीताके प्रत्येक अध्यायका सारांश नीचे दिया जा रहा है—

पहला अध्याय—हिंसा-रहित श्रद्धालु व्यक्तिको ही आत्म-जिज्ञासा पैदा होती है।

दूसरा अध्याय—निष्काम कर्मके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि और अनन्तर ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर ही भगवत्स्मरण संभव है। अन्यथा संसार बन्धनमें पड़कर भगवत् स्मरण नहीं होता। इस अध्यायको 'गीता-सूत्र कहा जा सकता है। इसमें कर्म और ज्ञानयोगका स्पष्ट रूपसे और भक्तियोगका अस्पष्ट रूपमें विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रश्न-कर्ताके स्वभाव, आत्मयाथात्म्य-साधक निष्काम कर्मयोग

आत्म-अनात्म-विवेक तथा स्थितप्रज्ञ पुरुषोंके लक्षण आदि विषयोंका सुन्दर विवेचन है।

तीसरा अध्याय—जड़-शरीर प्राप्त जीवोंको कर्म करनेमें विवशता; युद्धकर्मकी आवश्यकता, आत्मरति को प्राप्त हुए व्यक्तियोंको भी कर्मकी आवश्यकता, आसक्ति और फलकी कामनासे रहित होकर कर्म करनेकी आवश्यकता बतलाकर इन्द्रियोंको नियमित करने तथा कामको जय करनेके उपायोंका मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

चौथा अध्याय—इसमें भगवान्‌के अवतार ग्रहण करनेकी आवश्यकता, सकाम कर्म तथा युक्त कर्ममें अन्तर, नाना-प्रकारके यज्ञोंमें भगवत् तत्त्व अनुशीलन रूप ज्ञान-यज्ञकी श्रेष्ठता और तत्त्वज्ञानके परम शत्रु संशयको सम्पूर्ण रूपसे त्यागकर तत्त्वदर्शी महात्माओंके निकट आत्म-तत्त्वके उपदेशोंको ग्रहण करनेकी कर्त्तव्यता आदिका सुन्दर विश्लेषण है।

पाँचवाँ अध्याय—कर्मयोग और ज्ञानयोगकी एकता, कर्मयोगकी प्रारंभिक अवस्थामें कर्म-प्रधान ज्ञान और अन्तमें ज्ञान-प्रधान कर्मकी स्थिति, चिन्मय स्वभावयुक्त जीवोंकी भोग-वासनाके द्वारा बद्धावस्था की प्राप्ति, समदर्शन, वैराग्य, आत्माका अनुशीलन, काम-क्रोधको जीतनेके उपाय, कर्मयोग द्वारा शरीर निर्वाहपूर्वक अष्टांगयोगका साधन और भगवद्भक्ति रूप नित्य सुखका आविर्भाव—आदिका वर्णन किया गया है।

छठवाँ अध्याय—निष्काम-कर्मयोगकी चरम अवस्था और अष्टांगयोगका फल बतलाकर समस्त प्रकारके योगोंमें भक्तियोगकी श्रेष्ठता तथा श्रद्धालु भगवद्भक्तोंकी सर्वश्रेष्ठताका प्रतिपादन किया गया है।

सातवाँ अध्याय—भक्तियोगके साधनसे निश्चित रूपसे सम्पूर्ण रूपसे भगवान्‌को जाना जा सकता है—ऐसा स्थापन किया गया है। इसके अतिरिक्त भगवान्‌के भक्तों और अभक्तोंके अलग-अलग चार प्रकारके भेदों को बतलाकर एककी श्रेष्ठता तथा भक्तियोगके आचरणकारीके स्वभाव आदिका वर्णन किया गया है।

आठवाँ अध्याय—इसमें क्षर और अक्षर दो प्रकारके पुरुषोंका तत्त्व उपदेश है। इसके अतिरिक्त अन्तिमकालमें भगवान्‌को स्मरण करनेवालोंकी गति, दूसरे दूसरे देवताओंको स्मरण करनेवालोंकी गति, अनन्य रूपसे भगवान्‌को भजनेवालोंकी गति, ब्रह्माके दिन-रातका मान, आलोक-यान और धूम्रयान मार्गों का परिचय आदि विषयोंका मनोरम वर्णन है।

नवाँ अध्याय—परम गुह्यतम भक्ति-तत्त्व, उसके अनुशीलनकी विधि, स्वर्ग-प्राप्तिका फल, अनन्य भक्तोंका सौभाग्य, कृष्ण-भजन और दूसरे दूसरे देवताओंकी पूजामें अन्तर, सहजरूपसे संग्रहीत वस्तुओंके द्वारा जीवन-निर्वाहपूर्वक भक्तियोगका आचरण, भगवान्‌का भक्तोंके प्रति पक्षपातित्व, भक्तियोगके आचरणकारियोंके पतनका अभाव आदि विषयोंका विश्लेषण है।

दसवाँ अध्याय—भगवान्‌की विभूतियोंका विचार तथा सर्वत्र समस्त वस्तुओंमें भगवान्‌की विद्यमानता का सुन्दर विवेचन है।

ग्यारहवाँ अध्याय—अर्जुन द्वारा विश्वरूपका दर्शन, उस विश्वरूपको देखकर अर्जुनकी अवस्था, विश्वरूप और कृष्णरूपका पार्थक्य तथा अनन्य भक्ति की श्रेष्ठता आदिका वर्णन है।

बारहवाँ अध्याय—निर्विशेष और सविशेष-दोनों प्रकारके उपासकों तथा दोनों प्रकारकी उपासना-ओंमें तारतम्यमूलक विचार, सविशेष उपासना और उपासकोंकी श्रेष्ठता, भगवान्‌के प्रिय भक्तोंके लक्षण आदि विषयोंका वर्णन है।

तेरहवाँ अध्याय—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान और ज्ञेयके स्वरूपका निर्णय किया गया है।

तेरहवाँ अध्याय—सात्विक, राजसिक और तामसिक—तीन प्रकारकी प्रकृतियाँ, उनका लक्षण, त्रिगुणातीत अवस्थाका परिचय, उस अवस्थाको प्राप्त होनेका उपाय और उसका फल आदि विषयोंका वर्णन है।

पन्द्रहवाँ अध्याय—संसार-वृक्षका परिचय, शुद्ध जीवके संसारबन्धनका हेतु, उससे मुक्तिका उपाय, वैकुण्ठका स्वरूप, क्षर, अक्षर और इन दोनोंसे परे पुरुषोत्तम परमात्माका परस्पर भेद आदिका विवेचन है।

सोलहवाँ अध्याय—दैवी और आसुरी सम्पदाओं (गुणों) का वर्णन कर आसुरी सम्पदाको नरक का द्वार कहा गया है।

सत्रहवाँ अध्याय—सात्त्विक, राजस और तामस-तीनों गुणोंके भेदसे मनुष्य, आहार, तपस्या, दान और यज्ञ—तीन-तीन प्रकारके बतलाये गये हैं। पुनः शास्त्रों द्वारा नियतकी गई विधियोंका उल्लंघन कर कर्म करनेके कुफलों और शास्त्रोंके द्वारा नियत विधियोंके अनुसार कर्म करनेके सुफलों का वर्णन है।

अठारवाँ अध्याय—इसमें सम्पूर्ण गीताका सार-तात्पर्य है। जीवोंके चरम और परम कल्याण स्वरूप भगवत्प्राप्तिके लिये उनके प्रति अनन्य शरणागति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है—इसका प्रतिपादन किया गया है तथा भगवद्भक्तिको समस्त प्रकारके उपदेशों में परमगुह्यतम और श्रेष्ठतम उपदेश बतलाया गया है।

परम पूज्य ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुरने गीताके 'विद्वद्रञ्जन भाषाभाष्य' में लिखा है—

सम्पूर्ण गीता शास्त्रका सारांश यह है कि अद्वय-वस्तु ही एकमात्र तत्त्व हैं। दूसरे-दूसरे समस्त तत्त्व भगवान्‌की शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं। उस अद्वय तत्त्व को ही भगवान् कहते हैं। वे भगवान् स्वयं श्रीकृष्ण हैं। भगवान्‌की स्वरूप शक्ति अर्थात् पराशक्ति तीन प्रकारकी होती है—चित् शक्ति, जीव शक्ति और माया शक्ति। चित् शक्ति भगवत्स्वरूप और चित् जगत्‌के समस्त प्रकारके वैभवको प्रकट करती है। जीव शक्ति—मुक्त और बद्ध दो प्रकारके अनन्त जीवोंको प्रकाश करती है। और मायाशक्ति—चौबीस प्रकारके तत्त्वोंको प्रकट करती है। इन तीनोंके अतिरिक्त कालशक्ति सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है एवं क्रिया शक्ति समस्त प्रकारके कर्मोंको प्रकट करती है। ईश्वर, प्रकृति, जीव, काल और कर्म—ये पाँचों तत्त्व भगवत्तत्त्वसे उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्म और परमात्म-भाव भगवत्-तत्त्वके अन्तर्गत भाव हैं। उपर्युक्त पाँचों तत्त्व परस्पर भिन्न होते हुए भी भगवत् तत्त्वके अधीन एक तत्त्व हैं। पुनः एक तत्त्व होकर भी अपने-अपने विशेष धर्मोंके कारण परस्पर नित्य भिन्न हैं। गीता शास्त्रका यह भेदाभेद तत्त्व मानव बुद्धिसे अगम्य है। इसीलिये प्राचीन-प्राचीन महाजनोंने इस गीता तत्त्व को 'अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्व' कहा है। इस अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व सम्बन्धी ज्ञानका नाम ही 'तत्त्व ज्ञान' है।

जीव स्वरूपतः शुद्ध चेतन है। वह चित्-सूर्य स्वरूप श्रीकृष्णका परमाणुगत तत्त्व विशेष है। जीव असंख्य हैं। वे स्वाभावतः चित् और अचित् दोनों जगतोंमें गमनागमनके योग्य होते हैं। चित् और अचित् दोनों जगतोंकी सीमा रेखा पर ही उनकी प्रथम स्थिति है। वे चेतन होनेके कारण स्वभावतः स्वतंत्र होते हैं। इसलिये उस तट रेखासे चित् जगत् की ओर झुकाव होनेसे वे कृष्णके उन्मुख होकर स्वरूप शक्तिकी ह्लादिनी वृत्तिकी सहायतासे शुद्ध आनन्द भोग करनेमें समर्थ होते हैं अथवा पार्श्व स्थित मायिक जगत्‌की ओर झुकाव होनेपर वे माया शक्तिके आकर्षणसे कृष्ण-विमुख होकर पार्थिक सुख-दुखका भोग करते हैं। चित् जगत्‌में प्रविष्ट जीवों का नित्यमुक्त और जड़ जगत्‌में आसक्त जीवोंको नित्यबद्ध जीव कहते हैं। दोनों प्रकारके जीवोंकी संख्या अनन्त है।

बद्धजीव मायाके बन्धनमें पड़कर अपने शुद्ध स्वरूपको तथा भगवान्‌को भूल जाता है तथा जड़

संसारमें मायिक सुखके अन्वेषणमें इधर-उधर भटकता फिरता है । कभी देव, कभी दैत्य तो कभी मनुष्य, कभी पशु-पक्षी आदि भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्मलेकर जन्म-मरणके चक्करमें भ्रमण करता रहता है । सौभाग्य वश किसी समय संसारसे विरक्त होकर उपयुक्त गुरुके चरणोंमें आश्रय लेकर कर्मयोग द्वारा ध्यान सिद्ध होने पर जीव स्व-स्वभावरूप भगवत् रति (प्रेम) की प्रारम्भिक अवस्था प्राप्त करता है । कभी-कभी वह भगवान्‌की लीला कथाओं के प्रति श्रद्धायुक्त होकर उपयुक्त गुरुकी शरण लेकर उनके आनुगत्यमें क्रमशः साधन, भाव और प्रेम तक प्राप्त कर लेता है । उपरोक्त दो प्रकारके उपायोंके अतिरिक्त आत्मयाथात्म्य प्राप्त करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है । इनमेंसे कर्मयोग ही साधारणतः अवलम्बनीय है, क्योंकि यह अपने प्रयत्नोंके अधीन होता है अर्थात् अपनी चेष्टासे इसका साधन किया जाता है । किन्तु श्रद्धासे उत्पन्न भक्तियोग कर्मयोगकी अपेक्षा अधिक सहज और सरल होने पर भी इसमें भगवत्कृपा या साधु-कृपाकी अपेक्षा होती है । यही कारण है कि अधिकांश लोग ज्ञानगर्भ-कर्मयोगका अधिक आदर करते हैं । उनमेंसे जिनका अधिक भाग्योदय होता है, केवल उनमें ही भक्तियोगके प्रति श्रद्धा होती है तथा गीताके चरम श्लोकमें बतलायी गयी शरणागति उत्पन्न होती है—यही समस्त वेदोंद्वारा प्रतिपादित अभिधेय अर्थात् भगवत्प्राप्तिका साधन है ।

सकाम कर्ममार्ग द्वारा पार्थिव अर्थात् स्वर्गीय नश्वर सुखकी प्राप्ति होती है । यह जड़ीय सुख चेतन-स्वरूप जीवोंके लिये अत्यन्त तुच्छ और हेय होता है । गीताके प्रारंभमें ही ऐसे-ऐसे सकाम कर्मोंको तथा उनमें पाये जानेवाले विषय-सुखोंको अत्यन्त हेय प्रतिपादन किया गया है । जरा-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर केवलाद्वैतकी सिद्धिरूप सायुज्य निर्वाण आदि मुक्तियाँ भी जीवोंका चरम प्रयोजन नहीं हैं, इसे भी गीताके अनेक स्थलोंमें कहा गया है । अद्वैत-सिद्धि और सालोक्यादि चार प्रकारके ईश्वरके धामोंकी प्राप्तिरूप मुक्त भूमिकाको पारकर भगवल्लीला रूप याथात्ममें प्रवेश कर भगवद्भाव अर्थात् निर्मल भगवत्प्रेम लाभ करना ही जीवका चरम प्रयोजन है—इसे गीताके अन्तमें बतलाया गया है । भगवद्भक्तिके द्वारा निर्मल कृष्णप्रेमकी प्राप्ति ही गीताका चरम और एकमात्र प्रतिपाद्य विषय है । गीता ज्ञानका यही अमृत फल है ।

गीता समस्त वेद-वेदान्त, उपनिषद् और पुराणों का सार-संग्रह है तथा भक्तियोग इस गीताका भी हृदय है । इसमें जीवोंके परम उपास्य द्विभुज श्याम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाकर समस्त जीवोंको अपना चरम उपदेश दे रहे हैं कि सम्बन्ध ज्ञानसे युक्त होकर भक्तियोगके द्वारा भगवत्प्रेम लाभ करो । यही जीवोंके लिये चरम प्रयोजन है । अपने-अपने अधिकारके अनुसार धर्म जीवन पालन करनेके साथ-साथ सर्वदा श्रवण आदि रूप भक्तियोगका आचरण करो । भक्तिके अनुकूल स्वधर्म (वर्णाश्रम धर्मका) का पालन करते हुए देह यात्रा निर्वाह करो और श्रद्धापूर्वक क्रमशः पूर्व निष्ठाको त्याग कर शरणागति द्वारा भक्तियोगके सहारे आगे बढ़ते जाओ । ऐसा होने पर तुमलोग अशोक, अभय और अमृत स्वरूप मेरी कृपा प्राप्त कर नित्य भगवत् प्रेम रूप समुद्रमें निमज्जित हो जाओगे ।'

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

श्रीश्रीव्यास-पूजा

विशुद्ध श्रीरूपानुगधाराके वर्त्तमान संरक्षक, श्री श्रीजगन्नाथ--भक्तिविनोद-गौरकिशोर-सरस्वतीके मनोऽभीष्ट पूरक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक गौड़ीय वेदान्ताचार्य ॐ विष्णुपाद श्रील भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अध्यक्षता में समस्त शाखा-मठोंमें नित्यलीला-प्रविष्ट परमहंसकुल-चूड़ामणि जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीव्यास-पूजा या गुरु-पूजाका महोत्सव खूब समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा अनुष्ठित श्री श्रीव्यास-पूजाकी एक विशेषता है। वह यह कि जिस पूजा-पद्धतिके अनुसार श्रीनिवास पण्डितके घरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुजीने व्यास-पूजाकी थी, जिस पूजा-पद्धतिको जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने स्वयं पुरी स्थित शङ्कर-सम्प्रदायके गोवर्धन मठसे बड़ी कठिनतासे उद्धार किया है, तथा जिसे सप्तम गोस्वामी श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने संशोधन और परिवर्द्धन किया है, श्रीगौड़ीय-वेदान्त समिति उसी पूजा-पद्धतिका अनुसरण करती है। श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके प्रकटकालमें इस पूजा-पद्धतिका केवल प्रकाशन मात्र हो पाया था, प्रचलन नहीं हो पाया था। परन्तु श्रील प्रभुपादके अप्रकटके बाद उनके परम प्रेष्ठ ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने इसका प्रवर्त्तन कर श्रील प्रभुपादकी मनोभिलाषाको पूर्ण किया है तथा गुरु-सेवाका सर्वोत्तम आदर्श स्थापित किया है। यह कार्य प्रभुपादके एक स्थूल मन्दिरके निर्माणकी अपेक्षा अधिक मूल्यका है। श्रील प्रभुपादकी वाणी ही इस कथनकी पुष्टि करती है--"हम इस जगत्में काठ-पत्थरके कारीगर होने नहीं आये हैं; हम तो श्रीचैतन्यदेवकी वाणीके वाहक मात्र हैं।" अतः श्रीगुरुदेव की वाणियोंको विश्वमें प्रचार कर उनकी मनोभिलाषाओंको पूर्ण करना ही गुरु-सेवाका श्रेष्ठ--निदर्शन है।

'व्यास'—शब्दका अर्थ 'विस्तार' से है। अर्थात् जिन्होंने वेदोंका संग्रह, विभाग और संपादन कर, अठारह पुराणों, पंचमवेद महाभारत, वेदान्त दर्शन तथा श्रीमद्भागवत जैसे अमूल्य ग्रन्थोंकी रचना कर एवं स्वयं समग्र विश्वमें पर्यटन कर अपने समाधि-लब्ध ज्ञानालोकसे विश्वको उद्भासित कर सर्वत्र ही भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाका विस्तार किया है, वे भारतीय वाङ्मयमें श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्णद्वैपायन वेद-व्यास कोई साधारण कवि, लेखक, कर्मी, ज्ञानी या भक्त मात्र नहीं हैं, वे भगवान्के शक्त्यावेशावतार हैं, जो मायाबद्ध जीवोंकी दुर्दशा देख कर करुणासे आर्द्र होकर जगत्में स्वेच्छासे अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने जगत-कल्याण के लिये इतने अधिक ग्रन्थोंको प्रकाश किया है कि कोई भी मनुष्य उन समस्त ग्रन्थोंको एक जन्मकी तो बात ही क्या अनेक जन्मों-तक पढ़ कर शेष नहीं कर सकता। धर्मनीति, राज-नीति, समाजनीति, काव्य, व्याकरण, छन्द, ज्यो-तिष, दर्शन, विज्ञान आदि विश्वका कोई भी एक ऐसा विषय अछूता नहीं बचा है, जिसका वर्णन इनकी रचनाओंमें न पाया जासके।

श्रीमद्भागवत और गीताका आदर विश्वके शिक्षित-अशिक्षित, धनी-गरीब प्रत्येक वर्गमें सर्वत्र है। आजकी विनाशकारी सभ्यतासे त्रस्त और अशांत मानव-हृदय निर्भयता और शान्तिकी खोजमें है। भागवत और गीताके अमर और दिव्य संदेश उन्हें ये दोनों वस्तुएँ प्रदान कर सकते हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें

निखिल स्थानोंके निखिल जीवोंके निखिल युगोंकी सम्पूर्ण समस्याओंका अश्चर्यरूपसे समाधान है। प्राचीन भारतने श्रीव्यासदेवकी वाणियोंके बल पर ही सम्पूर्ण-विश्वका चिरकाल तक नेतृत्व किया है।

यद्यपि आज भारत अपना सर्वस्व खो दिया है, आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक और वैज्ञानिक विषयों में संसारके दूसरे-दूसरे राष्ट्रोंसे पिछड़ा हुआ है, तथापि वह अपनी प्राचीन संस्कृति और विचार-धाराओंके कारण-जिसके मूलाधार श्रीव्यसादेव ही है विश्वमें अपना मस्तक ऊँचा रखे हुए है। यदि भारतीय संस्कृतिसे, भारतीय विचारधारासे, भारतीय दर्शनसे श्रीदेवव्यासको अलग कर दिया जाय तो भारत देवतासे शून्य मन्दिर अथवा आत्मासे रहित देहके समान सारहीन बच रहता है।

आजकल विश्वके सारे राष्ट्र निर्माण और विकाशकी योजनाओंमें जोरोंसे लग पड़े हैं। भारत भी क्यों पिछड़ने लगे? किन्तु एक ओर जहाँ कृषि, वाणिज्य, कुटीर शिल्प, और उद्योग धन्धोंका विकाश किया जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर रिश्वत, ठगी, चोरी, डकैती, शोषण आदि दुर्नीतियों तथा हत्या और युद्ध आदिकी विभिषिका और आतंकसे मानव हृदय अतिशय त्रस्त और क्षुब्ध है। एक तरफ बाह्य और भौतिक प्रगति तो देखी जाती है, किन्तु दूसरी ओर आध्यात्मिक और नैतिक जीवनका दिनोंदिन तीव्र ह्रास हो रहा है। एक ओर विश्वशान्ति, अहिंसा और पंचशीलके सिद्धान्तोंकी दुहाई दी जाती है और दूसरी ओर भारतीय संस्कृतिकी प्रतिमूर्त्ति गो-जाति आदि पशुओंका तथा राजनीतिके रङ्गमंचपर रण-क्षेत्रोंमें कीटाणुओंकी तरह असंख्य मानवोंका संहार किया जाता है। आजका शिक्षित समाज हमारे ख्यालसे किसी भी युगके अशिक्षित और बर्बर कही जानेवाली आदिम जातियोंकी अपेक्षा भी कहीं बढ़ कर विध्वंशकारी और बर्बर सिद्ध हो रहा है।

भारत आज पूरी शक्तिसे इन बाहरी निर्माणोंकी ओर लग पड़ा है। नये-नये स्कूल और कॉलेज खुल रहे हैं, नये-नये बाँधोंका निर्माण हो रहा है, नये नये कारखाने खुल रहे है, नये-नये मार्ग तैयार हो रहे हैं, तथा अधुनिक अनुसंधानशालाएँ आदि स्थापित हो रही हैं। परन्तु इतना होने पर भी कोई सुफल नहीं दीख पड़ता। अन्नका अभाव है, शिक्षाकी कमी है, दुर्नीतिका बोलबाला है, सर्वत्र गड़बड़ घोटाला चल रहा है।

आखिर इसका कारण क्या है? इस पर यदि हम गंभीरतासे विचार करें तो पायेंगे कि हम जहाँ बाह्य और भौतिक समृद्धिपर जोर दे रहे है, बाह्य समृद्धिको ही सुख और शान्तिका उद्गम स्थान मान रहे हैं, वहाँ हम आंतरिक या आध्यात्मिक विकाश की पूर्णतया उपेक्षा कर रहे हैं, प्राचीन भारतीय संस्कृति और विचारोंकी अवहेला कर रहे हैं। स्मरण रहे कि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास ही भारतीय संस्कृति और अध्यात्मके मूलाधार हैं। इस आन्तरिक अर्थात् आध्यात्मिक विकाशके अभावमें नव भारत का निर्माण दूल्हेके बिना बरातके समान है। अतः भारत जबतक व्यास-वाणियोंका आदर करना नहीं सीखेगा, व्यासदेवकी पूजा करना नहीं सीखेगा, तब तक इसकी यथार्थ उन्नति अर्थात् कल्याण सुखे हुए वृक्षसे फलकी अभिलाषा करना है।

यह स्पष्ट है कि भारतका यह बाह्य और भौतिक रचनात्मक दृष्टिकोण सर्वथा बहिर्मुख और अपूर्ण है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि यथार्थ कल्याण अर्थात् साध्य क्या है? तथा उसका साधन क्या है? श्रीवेदव्यास ब्रह्मपद, स्वर्गराज्य, चक्रवर्ती राज्य, पातालका राज्य, योग आदिकी अलौकिक सिद्धि तथा मोक्ष तकको भी साध्य नहीं मानते—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं,
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा,
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।

बल्कि वे कृष्ण-सेवा या कृष्ण-प्रेमको जीवोंके लिये सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन या साध्य मानते हैं। उनकी

शिक्षा यह है कि जीव-चेतन वस्तु है। भगवद्दास्य ही जीवात्माका स्वरूप है। यही उसका स्वभाव है। स्वभाव को ही वस्तुका धर्म कहते हैं। इस स्वभाव या धर्मका गलत व्यवहार ही संसार-बंधनका—सारे दुखोंकी जड़ है। संसारके पशु-पक्षी, तृण,लता, गुल्म आदि सभी हमारे स्वजन हैं। उन सबकी माया-मरीचिकासे उद्धार करना हमारा कर्त्तव्य है।

यही शान्ति और नित्य सुखका कारण है। आधुनिक समाज इसे भौतिक साधनोंसे तथा भौतिक समृद्धिसे प्राप्त करना चाहता है। परन्तु युगोंके इतिहासकी पृष्ठ-भूमि अवलोकन करनेसे पता चलता है कि यथार्थ कल्याणकी प्राप्तिके लिये भौतिक समृद्धि कारण नहीं है। बल्कि अधिकांश क्षेत्रोंमें भौतिक समृद्धि यथार्थ कल्याणके मार्गमें बाधक ही होती है। इसके लिये तो भारतको व्यासदेवकी वाणियोंकी ओर मुड़ना पड़ेगा। जब तक आत्मा और अनात्माका विवेक नहीं होता, चेतन और अचेतनका ज्ञान नहीं होता, जब तक शरीर और मन सम्बन्धी समस्त धर्मोंको त्यागकर भगवत् सेवामें प्रवृत नहीं हुआ जाता, तबतक परमश्रेयः की प्राप्ति नहीं हो सकती। व्यासदेवने इसका साधन हरिनाम संकीर्त्तन बतलाया है। उन्होंने अपने अनेक ग्रंथोंमें इसे बार-बार दुहराया है।

अस्तु, यदि हमें उन्नत होना है, तो हमारा सर्वप्रथम और सर्वप्रधान कर्त्तव्य यह है कि हम श्रीव्यासदेवकी पूजा करना सीखें। जो व्यासदेव भारतीय संस्कृति और सभ्यताके प्राण है, जिनका भारत ही नहीं, सारा विश्व चिर ऋणी है और चिर ऋणी रहेगा, उनकी कृतज्ञता स्वीकार करना, पूजा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। पूजाका तात्पर्य उनकी वाणियोंकी श्रेष्ठता उपलब्धि कर उन्हें अपने जीवनमें उतार कर अपने चरित्रका, अपने समाजका तथा अपने राष्ट्रका निर्माण करना तथा क्रमशः हरि-भजन करते हुए परतत्त्वका अनुशीलन करना है। ऐसा होने पर जीव साधन-पथ पर अग्रसर होते-होते चरम प्रयोजन कृष्ण-प्रेमको प्राप्त कर सकता है।

—संपादक

प्रचार प्रसङ्ग

(क) गौर-विनोद-वाणी आश्रम,खड्गपुरमें श्री श्रीव्यासपूजा—

उपरोक्त आश्रमके अध्यक्ष त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति जीवन जानर्दन महाराजके विशेष उद्योगसे यहाँ पर इस वर्ष २४ माघसे २६ माघ ३ दिनों तक श्रीश्रीव्यास-पूजाका महोत्सव खूब समारोह के साथ मनाया गया है। मथुरासे परमहंस स्वामी ॐ विष्णुपाद १००८ श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, श्रीगौराचाँद ब्रह्मचारी तथा श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी; नवद्वीपसे श्रीपाद रसराज ब्रजवासी और श्रीमुकन्ददास ब्रह्मचारी तथा दूसरे-दूसरे स्थानोंसे श्रीपाद सनातन दासाधिकारी, श्रीपाद गजेन्द्रमोक्षन दासाधिकारी आदि विशिष्ट व्यक्ति वहाँ पधारे थे। खड्गपुरके प्रत्येक वर्गने इसमें आन्तरिक योगदान किया था। दैनन्दिनी इस प्रकार है—

२४माघ शुक्रवार —ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अविर्भाव-तिथि की अर्चना। मंगल-आरती और ऊषा कीर्तनके पश्चात् श्रीचैतन्य भागवतसे श्रीश्रीव्यास-पूजा-प्रसङ्ग पाठ हुआ। सबेरे १० बजेसे १२ बजे तक—श्रील आचार्यदेवने अपने श्रीगुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण की। तत्पश्चात् आचार्य

देवके दूर-दूरसे आयी हुई शिष्यमण्डलीने श्रीश्रीआचार्य देवके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान कर श्रील प्रभुपादके चरणोंमें श्रद्धांजलियाँ अर्पण की। शामको एक विराट सभाका आयोजन किया गया जिसमें श्रील आचार्यदेवने छायाचित्र द्वारा श्रीश्रीगौर लीला और श्रीश्रीव्यासदेव एवं प्रभुपाद तथा उनकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें भाषण दिये।

२५ माघ, शनिवार—दूसरे दिन, कृष्णा पञ्चमी को मंगल-आरती, ऊषा-कीर्तन और प्रवचनके पश्चात् सबेरे ८ बजेसे श्रील प्रभुपाद द्वारा संग्रहीत पूजा-पद्धतिके अनुसार घट, पताका, आम्र-पल्लव, कदली-खंभ आदिसे सुसज्जित विराट और विचित्र वेदीपर श्रील आचार्यदेवके आनुगत्यमें त्रिदण्डिस्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराज और श्रीपादरसराज व्रजवासीने श्रीश्रीव्यास-पूजा और तदंगीभूत श्रीपूजा-पञ्चकका विधिवत पूजन आरंभ किया। असंख्य-दर्शक इस अभिनव और अभूतपूर्व व्यापार का दर्शन कर मुग्ध और आश्चर्य-चकित रह गये। २ बजे दिन तक पूजन चलता रहा। पश्चात् श्रील प्रभुपादके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देकर श्रील प्रभुपादका आरती-कीर्तन और भोग-आरती होनेके बाद सबको महाप्रसाद वितरण किया गया। शाम को ४ बजे विराट नगर-संकीर्तन बाहर हुआ, जो खड्गपुरके प्रधान-प्रधान पथोंसे होता हुआ शामके सात बजे आश्रमको लौट आया। रात ८ बजेसे १० बजे तक श्रीश्रीव्यास देव और श्रीलप्रभुपाद एवं उनकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें श्रील आचार्यदेव और त्रिदण्डि स्वामी भक्तिजीवन जनार्दन महाराजने सारगर्भित भाषण दिये।

२६ माघ, रविवार—तीसरे दिन, सबेरे मंगलारति, ऊषा-कीर्त्तन और भागवत् पाठके बाद दो पहर से रातके १० बजे तक निमंत्रित और अनिमंत्रित लगभग ५ हजार व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

इस महोत्सवमें त्रिदण्डिस्वामी भक्तिजीवन जनार्दन महाराजकी हरि गुरु वैष्णव-सेवामें निष्ठा और हरिकथाके प्रचारमें उत्साह स्तुत्य रहा है। हम उनकी इस गुरु-सेवा-प्रवृत्ति और हरिकथा प्रचारकी भावना का अभिनन्दन करते हैं।

(ख) खड्गपुरमें शुद्ध भक्ति-धर्मका प्रचार—

यहाँके धर्म-प्राण नागरिकोंके विशेष आह्वान पर स्थानीय प्रसिद्ध व्यवसायी और परम धार्मिक श्रीमहादेव शाहुके निवास स्थानपर २ फरवरी तथा ६ फरवरीको त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराजने श्रीमद्भागवतका प्रवचन किया तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ने छायाचित्र द्वारा कृष्णलीलाके सम्बन्धमें सारगर्भित भाषण दिया। पुनः ६ फरवरीको स्थानीय बाजारमें छायचित्रके सहारे त्रिदण्डि स्वामी श्रीभक्ति वेदान्त नारायण महाराजने कृष्णलीलाके सम्बन्धमें भाषण दिये। इन भाषणों, प्रवचनों और इनके मधुर संकीर्त्तनोंसे सारे खड्गपुरमें चेतनताकी एक लहर सी दौड़ गयी है।

(ग) नाईकुण्डी कल्याणपुर और बेगमपुरमें श्रीलआचार्य देव—

नाईकुण्डीके प्रसिद्ध जमींदार श्रीयुत सीतानाथ पतिके विशेष अनुरोधसे श्रील आचार्यदेव, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, श्रीपादरसराज व्रजवासी और कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ विगत १० फरवरीको उनके निवास स्थान पर पधारे। दूसरे दिन ११ फरवरीको श्रीसीतानाथ पतिने आचार्यदेवके निकट श्रीहरिनाम और दीक्षा ग्रहण किया। शामको आचार्यदेवका भाषण हुआ। ११ फरवरी को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारकेप्रधान स्तंभ श्रीपाद गजेन्द्रमोक्षन दासाधिकारी महोदयके आग्रहसे सपार्षद आचार्यदेव उनके वास-भवन कल्याणपुरको पधारे। शामको एक सभाका आयोजन किया गया, जिसमें श्रीयुत रासबिहारी दासाधिकारी, 'भक्तिशास्त्री'—सहकारी सम्पादक—"श्रीगौड़ीय पत्रिका" और वहाँके

अनेक संभ्रान्त व्यक्तियोंने योगदान किये । श्रील आचार्यदेवने भाषण दिये । पुनः २० फरवरीको वेगमपुर निवासी श्रीपाद सनातन दासाधिकारीके आग्रहसे वहाँ पधारे और एकदिन भागवत्-धर्मका प्रचार कर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चिनसुरामें लौट गये ।

(घ) हुगली और चौबीसपरगनेमें—

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज कतिपय ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर श्रीरामपुर, वैद्यबाटी, सेवड़ाफूली (हुगली); कृष्णचन्द्रपुर, काशीनगर, खाड़ीघाट, खाड़ापाड़ा, रायदीघी, सरबेड़िया, एकतारा, सराँची, घटकपुर (चौबीसपरगना) आदि अनेक स्थानोंमें शुद्धभक्ति-धर्मका-प्रचार कर श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा और श्रीगौर-जन्म महोत्सवमें योगदान करनेके पश्चात् गत १३-३-५८ को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पधारे हैं ।

(ङ) मेदिनीपुर, सुन्दरवन (लाट अंचल) और बर्दवान जिलेके ग्रामोंमें—

समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज श्रीपाद भगवानदास ब्रह्मचारी, श्री अद्वैत दासाधिकारी और कतिपय शुद्ध भक्तोंको लेकर उपर्युक्त स्थानोंमें शुद्ध-भक्ति धर्मका विपुल प्रचार कर श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सवमें सम्मिलित हुए ।

श्री श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और गौर-जन्मोत्सव

पिछले वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय-वेदान्त समितिके उद्योगसे कलियुग पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीशचीनन्दन गौर-हरिकी निखिल भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें विगत १६ फाल्गुनसे २८ फाल्गुन तक सात दिनव्यापी श्रीनवद्वीपधामकी विराट परिक्रमा और श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव खूब धूम-धामसे सम्पन्न हुआ है। उल्लेख योग्य है कि पिछले वर्षोंसे इस वर्ष यात्रियोंकी संख्या बहुत ही अधिक थी । प्रथम दिन ही लगभग २००० यात्रियोंने परिक्रमामें भाग लिया था । इतनी अधिक संख्या होने पर भी श्रील आचार्यदेवकी अनुकम्पा और प्रबन्ध कर्त्ताओंकी कार्य कुशलता एवं सुव्यवस्थाके कारण किसीको तनिक भी असुविधा नहीं हुई ।

नृसिंहपल्ली और चाँपाहाटीमें शिविर स्थापित किये गये थे । इन स्थानोंमें यात्रियोंने रातें शिविरमें ही बितायीं । शिविर क्या होते थे, मानों कोई नया विराट नगर बस गया हो । यात्रियोंकी चहल-पहल, रातमें रोशनीकी जगमगाहट, संन्यासी महात्माओंके प्रवचन, भाषण और गगनभेदी संकीर्त्तनोंसे गौर-लीला-भूमि जगमग कर उठती थी, मानो गौरधाम-गौरभक्तोंको अपने अङ्कमें धारण कर नृत्य कर रहा हो । मृदङ्गोंकी मधुर-ध्वनि मेघ गर्जनको भी मात करती हुई भक्तोंको मत्त बना देती । भक्तोंके भावपूर्ण कीर्तन और उनके प्रेमपूर्ण हाव-भाव अभक्तोंके नीरस हृदयमें भी कृष्ण-प्रेम रूप सरसताका संचार करते थे । सम्पूर्ण क्षेत्र गौरकीर्तनमय हो रहा था ।

आगे-आगे मणीपुरी भक्तोंकी कीर्तन-मण्डली, उसके पीछे रत्नमण्डित श्रीमन्महाप्रभुकी पालकी, पालकीके अगल-बगलमें, स्वर्ण-मण्डित छत्र, चामार और व्यजन धारण करनेवाले ब्रह्मचारीवृन्द, उसके पश्चात् रथारूढ़ श्रील आचार्यदेव और उनके छत्र आदि धारण करनेवाली सेवक-मण्डली, उनके पीछे संकीर्तन रसमें मग्न नृत्य करती हुई संन्यासी-मण्डली, पश्चात् नृत्य-वाद्य करती हुई मृदङ्ग-मण्डली और उनके पीछे मत्त संकीर्त्तन-दल और उनके पीछे मीलों-तक विस्तृत नर-नारी-यात्रियोंकी अपार भीड़—दर्शक ठगेसे रह जाते । इस प्रकार श्रीनवद्वीप धामके नवों द्वीपोंकी परिक्रमा की गयी ।

२१ फाल्गुन बुधवारको सभी लोगोंने विधिपूर्वक उपवास किया। सारा दिन 'श्रीचैतन्यभागवत' परायण होता रहा। दूसरे दिन २२ फाल्गुनको लगभग १० हजार व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

कृतज्ञता प्रकाश

अन्तमें हम इस अनुष्ठानमें योगदान करनेवाले, किसी प्रकारकी सहायता करनेवाले या अनुमोदन करनेवाले व्यक्तियोंको धन्यवाद ज्ञापन करते हैं। विशेषकर कल्याणपुर निवासी श्रीपाद गजेन्द्रमोहन दासाधिकारी, पूर्वचक-निवासी श्रीयुत् गिरधारी दासाधिकारी (श्रीगिरीशचन्द्र दास) तथा बेगमपुर निवास श्रीसनातन दासाधिकारीकी विशेष सेवाओं और अनुदानोंके लिये श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करती है।

मन्दिरकी भित्ति-स्थापना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नवद्वीपस्थ शाखा मठ—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें २२ फाल्गुन, बृहस्पतिवार महामहोत्सवके दिन श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरधारीके श्रीमन्दिरकी भित्ति-स्थापनाका अनुष्ठान वेद-विधियोंके अनुसार सम्पन्न हुआ। परमहंस परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्-भक्ति प्रज्ञानकेशव गोस्वामी महाराजने महासंकीर्तन, शंख-ध्वनि और वैदिक-मन्त्रोंके बीच शिलान्यास की रस्में पूरी कीं। श्रीपाद गिरधारीदासाधिकारी (श्रीयुत गिरीशचन्द्र दास) उपरोक्त मन्दिर-निर्माण कार्यके लिये आर्थिक सहायता कर भगवत् सेवाका महान् आदर्श स्थापन कर रहे हैं। समिति उनकी इस भगवत् सेवाके लिये कृतज्ञता प्रकाश करती है।

जैव-धर्म

[संख्या ६ के पृष्ठ २१४ से आगे]

अब देखो, परम तत्त्वकी शक्ति कभी लुप्त नहीं होती। परम-तत्त्व सर्वदा स्वप्रकाश तत्त्व है। उस स्वप्रकाश तत्त्वकी तीन प्रकारकी शक्तियोंका वर्णन इस वेद मन्त्रमें पाया जाता है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्म-योनिः
कालकारो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधान-क्षेत्रज्ञ-पतिर्गुणेशः
संसार-मोक्ष-स्थिति-बन्धहेतुः॥ (क)
(श्वे० उ० ६।१६)

इस मंत्रमें पराशक्तिके तीन पदोंको बतलाया गया है। 'प्रधान' शब्दसे मायाशक्तिको, 'क्षेत्रज्ञ'-शब्दसे जीवशक्तिको और 'क्षेत्रज्ञपति' शब्दसे चित्शक्तिको लक्ष्य किया गया है। मायावादमें जो ब्रह्म-अवस्थाको लुप्त-शक्तिका तथा ईश्वरावस्थाको व्यक्त-शक्तिका प्रकाश बतलाया जाता है, वह एक काल्पनिक मतवाद मात्र है। वास्तवमें भगवान् सर्वदा सर्व-शक्तिमान् हैं। उनकी सब अवस्थाओंमें उनकी शक्तिका परिचय पाया जाता है। वे नित्यकाल अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं तथा वे उसी स्वरूपमें समस्त शक्तियोंसे युक्त होकर भी स्वयं स्वेच्छामय परम पुरुष हैं।'

व्रजनाथ—'यदि वे शक्तिसे युक्त हैं तो शक्ति द्वारा परिचालित होकर ही वे कार्य करते हैं। फिर उनकी स्वतन्त्रता और स्वेच्छामयता कहाँ रही ?'

(क) वे (परमात्मा) विश्वके रचयिता, सर्वज्ञ, आत्मयोनि अर्थात् स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, कालके भी महाकाल, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, सबको जाननेवाले, प्रधान (माया) के अधीश्वर, क्षेत्रज्ञपति, समस्त गुणोंके ईश्वर अर्थात् गुणोंसे अतीत या उनके नियन्ता तथा जन्म-मृत्यु रूप संसारमें बाँधने, स्थित रखने तथा उससे मुक्त करनेवाले हैं।

बाबाजी—'शक्ति शक्तिमतोरभेदः'—वेदान्तके इस सूत्रसे शक्ति और शक्तिमान पुरुषको परस्पर अभिन्न माना गया है । कार्य शक्तिका परिचय है अर्थात् शक्ति द्वारा ही कोई कार्य सम्पन्न होता है । परन्तु कार्य करनेकी इच्छा शक्तिमानका परिचय है । जड़ जगत्—माया शक्तिका कार्य है; जीव-समूह—जीव शक्तिका कार्य है और चित्-जगत् चित्शक्तिका कार्य है । चित्शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्तिको उनके अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देकर भी भगवान् स्वयं कार्यसे निर्लिप्त और निर्विकार हैं ।'

व्रजनाथ—'स्वेच्छासे कार्य करके भी वे स्वयं निर्विकार कैसे रह सकते हैं ? क्योंकि स्वेच्छामय होना ही तो विकार हो गया ।'

बाबाजी—'निर्विकार कहनेका तात्पर्य मायिक विकारसे शून्य होना है । माया—स्वरूप शक्तिकी छाया है । मायाका कार्य सत्य होने पर भी नित्य सत्य नहीं होता । अतएव परम-तत्त्वमें मायाका विकार नहीं होता । उसमें इच्छा और विलासरूप जो विकार होता है, वह चिद्वैचित्र्य अर्थात् चिन्मय प्रेमका विकाश विशेष है । उसको किसी प्रकारकी जड़ीय अपवित्रता आदि स्पर्श नहीं कर सकती है । वैसी चिद्विचित्रता अद्वयज्ञान (भगवान्) में होती है । स्वेच्छापूर्वक मायिक शक्ति द्वारा जड़-जगत्को उत्पन्न करके भी उनकी चित् स्वरूपता अखण्डरूपसे वर्त्तमान रहती है । चिद्वैचित्र्य (भगवान्की लीला आदि चित् जगत्के किसी भी व्यापार) से मायाका कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता । जिनकी बुद्धि मायिक होती है, वे जीव चिन्मय जगत्की विचित्रताओंको मायिक व्यापारके समान देखते हैं । जैसे कमल रोगके रोगीको सभी पदार्थ पीले दीख पड़ते हैं तथा जिस प्रकार मेघ द्वारा आच्छादित आँखें सूर्यको मेघाच्छन्न देखती हैं, उसी प्रकार मायिक बुद्धिवाले जीव चिन्मय नाम, चिन्मय रूप, चिन्मय गुण तथा चिन्मयी लीलाको भी मायिक रूपमें देखते हैं । तात्पर्य यह कि मायाशक्ति—चित् शक्तिकी छाया है । अतएव चित् कार्योंमें जो-जो विचित्रताएँ होती हैं, वे सब मायाके कार्योंमें भी प्रतिफलित होती हैं । अतः मायाशक्तिमें दीख पड़नेवाली विचित्रताएँ चित्शक्तिगत विचित्रताओंका हेय (अशुद्ध) प्रतिफलन अर्थात् छाया मात्र हैं । बाह्य दृष्टिसे दोनोंमें समानता रहनेपर भी ये दोनों विचित्रताएँ एक दूसरीके सम्पूर्ण विपरीत हैं । जैसे एक बड़े काँचके आइनेमें पड़ी मनुष्यकी छाया और उसकी कायामें स्थूल दृष्टिसे साम्य होनेपर भी सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों परस्पर विपरीत हैं, एक काया है—दूसरी उसीकी छाया है; कायाके अङ्ग प्रत्यङ्ग छायामें उलटे दीख पड़ते हैं अर्थात् बाँया हाथ दाहिनी ओर और दाहिना हाथ बाँयी ओर, बाँयी आँख दाहिनी ओर और दाहिनी आँख बाँयी ओर दीख पड़ती है । उसी प्रकार चित् जगत्की विचित्रता और मायिक जगत्की विचित्रता स्थूलतः एक समान दिखलाई पड़ने पर भी सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों परस्पर विपरीत हैं । मायिक विचित्रता—चिद् विचित्रताका ही विकृत प्रतिफलन है । इसलिये दोनोंके वर्णनोंमें यद्यपि साम्य सा है, तथापि वस्तुगत पार्थक्य है । मायिक विकारसे रहित वे स्वेच्छामय पुरुष मायाके अध्यक्ष-स्वरूप होकर माया द्वारा अपना कार्य करवाते हैं ।'

व्रजनाथ—'श्रीमती राधिका श्रीकृष्णकी कौन शक्ति हैं ?'

बाबाजी—'श्रीकृष्ण जैसे पूर्ण शक्तिमान तत्त्व हैं, श्रीमती राधिका भी वैसे ही उनकी पूर्ण शक्ति हैं । श्रीमतीको पूर्ण स्वरूप-शक्ति भी कहा जा सकता है । जैसे कस्तूरी और उसका गन्ध परस्पर अविच्छिन्न है, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति परस्पर अपृथक् हैं, उसी प्रकार श्रीमती राधिका और कृष्ण भी लीलारस आस्वादनके स्थलमें नित्य पृथक् होते हुए भी सर्वदा अपृथक् हैं । उन स्वरूप-शक्ति (श्रीमती-राधिका) की तीन प्रकारकी क्रिया-शक्तियाँ हैं—चित् शक्ति, जीव शक्ति और माया शक्ति । चित् शक्तिका दूसरा नाम 'अन्तरङ्गा शक्ति', जीव शक्तिका दूसरा नाम 'तटस्था शक्ति' और माया शक्तिका दूसरा नाम 'बहिरङ्गा शक्ति' है । स्वरूप शक्ति एक होने पर भी उक्त तीन रूपोंसे कार्य करती हैं ।

स्वरूप शक्तिके जो सब नित्य लक्षण हैं, वे चित् शक्तिमें पूर्णरूपसे, जीव-शक्तिमें अणुरूपमें तथा माया शक्तिमें विकृत रूपमें प्रकाशित हैं । इन उपरोक्त तीन प्रकारकी क्रिया शक्तियोंके अतिरिक्त स्वरूप-शक्तिकी और भी तीन प्रकारकी वृत्तियाँ हैं। उनके नाम हैं—ह्लादिनी, संधिनी और सम्वित्; दसमूलमें उनका इस प्रकार वर्णन है—

स वै ह्लादिन्यायाः प्रणय-विकृतेर्ह्लादन-रत-
स्तथा सम्विच्छक्ति-प्रकटित-रहोभाव-रसितः ।
तथा श्रीसन्धिन्या कृत-विशद तद्धाम-निचये
रसाम्भोधौ मग्नो व्रज रस-विलासी विजयते ॥

(४था दशमूल)

अर्थात स्वरूप शक्तिकी तीन प्रकारकी वृत्तियाँ हैं—ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित् । ह्लादिनीके प्रणय विकारमें कृष्ण सदा अनुरक्त रहते हैं, सम्वित् शक्ति द्वारा प्रकटित अन्तरङ्ग भावोंके द्वारा वे सर्वदा रसिक-स्वभाव हैं तथा सन्धिनी शक्ति द्वारा प्रकटित निर्मल वृन्दावन आदि धामोंमें स्वेच्छामय व्रजरस विलासी कृष्ण नित्य-रससमुद्रमें निमग्न रहते हैं ।

तात्पर्य यह है कि स्वरूप शक्तिकी ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्—इन तीनों वृत्तियोंका प्रभाव-चित्-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्तिके प्रत्येक कार्योंमें ओतप्रोत रहता है । स्वरूप-शक्तिकी ह्लादिनी वृत्ति वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाके रूपमें कृष्ण को सम्पूर्ण चित आह्लाद अर्थात् चिन्मय आनन्द प्रदान करती है । वे महाभाव स्वरूपा (सम्पूर्ण भावोंकी समष्टि रूपा) श्रीमती राधिका स्वयं श्रीकृष्ण को सब प्रकारसे आनन्द प्रदान करती तो हैं ही, अपने काव्यव्यूह स्वरूप आठ प्रकारके भावोंको अष्ट सखी और चार प्रकारके सेवाभावोंको प्रियसखी, नर्म-सखी, प्राण-सखी और परमप्रेष्ठ-सखी–इन चार श्रेणीकी सखियोंके रूपमें प्रकाशित कर रक्खा है । ये समस्त सखियाँ चित् जगत्रूप व्रजकी नित्य सिद्ध-सखियाँ हैं । स्वरूप-शक्तिकी सम्वित्-वृत्ति व्रजके समस्त प्रकारके सम्बन्ध-भावोंका प्रकाश करती है । सन्धिनी व्रजके पृथ्वी और जल आदिसे युक्त ग्राम, वन, उपवन, गिरिगोवर्धन आदि विलास पीठ तथा श्रीराधिका, श्रीकृष्ण, सखी, सखा, गोधन और दास, दासियोंके चिन्मय कलेवर और विलासके समस्त प्रकारके चिन्मय उपकरणोंको प्रकाशित करती है । श्रीकृष्ण ह्लादिनीके प्रणय-विकार रूप परानन्द-में सर्वदा विभोर रहते हैं । तथा सम्वित्-वृत्ति द्वारा प्रकटित भिन्न भिन्न भावोंसे युक्त होकर प्रणय-रसका आस्वादन करते हैं । बंशी बजा कर उससे गोपियों को आकर्षण, गोचारण और रास आदि लीला—ये सब क्रियाएँ कृष्ण अपनी पराशक्तिकी सम्वित् वृत्ति द्वारा सम्पादित करते हैं । सन्धिनी द्वारा प्रकटित धाममें व्रजविलासी श्रीकृष्ण सर्वदा रसमें निमग्न रहते हैं । कृष्णके लीलाधामोंमें व्रजलीला धाम ही सर्वोत्तम हैं ।'

व्रजनाथ—'आपने अभी बतलाया है कि सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी ये तीनों स्वरूप शक्तिकी वृत्तियाँ हैं । तथा स्वरूप शक्तिके एक अणु-अंशको जीव शक्ति और उसके छाया-अंशको माया शक्ति कहते हैं । अब कृपया इसका एक आभास दीजिये कि इन दोनों शक्तियोंके ऊपर उपरोक्त सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी वृत्तियाँ किस प्रकारसे कार्य करती है ।'

बाबाजी—'जीव-शक्ति स्वरूप-शक्तिकी अणु शक्ति है, इस शक्तिमें स्वरूप-शक्तिकी तीनों वृत्तियाँ अणु-अणु मात्रामें विद्यमान हैं । अर्थात् जीवमें ह्लादिनी वृत्ति ब्रह्मानन्दके रूपमें; सम्वित् वृत्ति—ब्रह्मज्ञानके रूपमें तथा सन्धिनी वृत्ति—अणु-चैतन्य रूपमें नित्य वर्तमान हैं । इस विषयको जीव तत्त्व विचारमें और भी स्पष्ट रूपसे समझा दूँगा । माया शक्तिमें ह्लादिनी वृत्ति-जड़ानन्दके रूपमें; सम्वित् वृत्ति भौतिकज्ञानके रूपमें तथा सन्धिनी-शक्ति चौदह लोकोंमें सम्पूर्ण जड़ ब्रह्माण्ड तथा जीवोंके जड़ शरीरके रूपमें प्रकाशित है ।'

व्रजनाथ—'यदि शक्तिके समस्त कार्य इसी प्रकार चिन्तनीय हैं, तब उसे अचिन्त्य क्यों कहा जाता है ?'

बाबाजी—'इन विषयोंका पृथक् पृथक् तो चिन्तन किया जा सकता है, परन्तु सम्बन्धके क्षेत्रमें सभी अचिन्त्य हैं। इस जड़ जगत्में परस्पर विरुद्ध-धर्म-समूह कहीं भी एकत्र नहीं मिल सकते। क्योंकि यहाँके परस्पर विरुद्ध-धर्म-समूह एक दूसरेको नष्ट कर देने वाले होते हैं। श्रीकृष्णकी शक्ति ऐसी अचिन्त्य प्रभाव युक्त होती है कि वह चित् जगत्में सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मोंको भी अत्यन्त अद्भुत और सुन्दर रूपमें एक ही समय एक साथ प्रकाश करती है। श्रीकृष्ण रूपवान होते हुये भी अरूप हैं। सर्वव्यापक होते हुए भी मूर्तिमान है, निर्लेप होते हुए भी सक्रिय हैं, अज होते हुए भी नन्दनन्दन है, सर्वाराध्य होते हुए भी गोपकुमार है, सर्वज्ञ होते हुए भी नर भाव प्राप्त हैं। इसी प्रकार वे सविशेष और निर्विशेष हैं, अचिन्त्य और रसमय हैं, असीम और ससीम है, अत्यन्त दूरस्थ और अत्यन्त निकटस्थ हैं, निर्विकार होते हुए भी गोपियोंके मानसे भयभीत हैं, कहाँ तक गिनाया जाय इसी प्रकारके असंख्य परस्पर विरोधी धर्म-समूह श्रीकृष्ण-स्वरूपमें, कृष्णधाममें तथा कृष्ण सम्बन्धी उपकरणोंमें नित्यकाल सुन्दर रूपसे निर्विरोध रूपमें एक साथ अवस्थित हैं। यही शक्तिका अचिन्त्यत्व है।'

ब्रजनाथ—'क्या वेद ऐसा स्वीकार करते हैं?'

बाबाजी—सर्वत्र ही ऐसा स्वीकृत है; श्वेताश्वतर (३।१९) में कहा गया है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥ (क)

ईशावास्योपनिषद्में भी—

'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः'॥ (ख)

'स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं
शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभुः।
स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥' (ग)

ब्रजनाथ—'क्या वेदमें स्वच्छन्द-शक्तिसे युक्त सर्व-तंत्र-स्वतंत्र भगवान्के संसारमें अवतीर्ण होने का उल्लेख है?'

बाबाजी—'हाँ, अनेक स्थलोंमें इसका उल्लेख है। तलवकार (केनोपनिषद्) में उमा और महेन्द्र सम्वादमें कहा गया है कि एक बार देवता और दानवोंमें भयंकर युद्ध छिड़ा। दानवोंकी इस बार करारी हार हुई। वे सिरपर पैर रख कर रण-स्थल

(क) वे परमात्मा प्राकृत हाथ-पैरोंसे रहित होकर भी अप्राकृत हाथसे समस्त वस्तुओंको ग्रहण करते हैं तथा अप्राकृत पैरोंसे सर्वत्र गमन करते हैं, प्राकृत नेत्र और कानोंसे रहित होकर भी अप्राकृत नेत्र और कानोंसे सब कुछ देखते और सुनते हैं; वे जो कुछ भी जाननेवाली वस्तुएँ हैं, उन सबको जानते हैं, परन्तु उनके जनाये बिना कोई भी उनको जान नहीं सकता। ब्रह्मविद् व्यक्ति उन्हींको आदि पुरुष अर्थात् समस्त कारणोंके मूलकारण-स्वरूप महान् पुरुष कहते हैं।

(ख) वे परमेश्वर चलते भी हैं और नहीं भी चलते; वे दूरसे भी दूर हैं और अत्यन्त समीप भी हैं; वे इस समस्त विश्वके भीतर और बाहर सर्वत्र परिपूर्ण हैं। यही चित् जगत्में समस्त विरुद्ध धर्मोंका युगपत् सामंजस्य है।

(ग) वे परमात्मा—सर्वव्यापी, शुद्ध, अप्राकृत सच्चिदानन्द स्वरूप, अकाय अर्थात् प्राकृत शरीर रहित, छिद्ररहित, शिराओंसे रहित, उपाधि रहित, कवि, सर्वज्ञ, स्वयंभू अर्थात् स्वेच्छासे प्रगट होनेवाले तथा सर्वोपरि विद्यमान और सर्वनियन्ता हैं। उन्होंने स्वयं अचिन्त्य शक्ति द्वारा दूसरे-दूसरे नित्य पदार्थोंको उनके विशेष २ गुणों के साथ अलग-अलग रखा है।

से भाग भड़े हुये। देवता विजयी हुए। यह विजय वस्तुतः भगवान्‌की ही थी। देवता तो केवल निमित्त मात्र थे। परन्तु देवता इसे भूल कर गर्वसे फूल कर अपने २ बल पौरुषका डींग हाँकने लगे। इसी बीच करुणावरुणालय पर-ब्रह्म भगवान अत्यन्त आश्चर्य-रूप से वहाँ अवतीर्ण होकर उनके गर्वका कारण पूछा और क्रमशः उन्हें एक तिनका देकर उसे ध्वंश करने के लिये कहा। परन्तु जब अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उस तिनकेको न तो अग्निदेव ही जला सके और न वायुदेव ही उसे उड़ा सके तो देववृन्द बड़े परेशान हुए। उन्हें भगवान्‌के अत्यन्त सुन्दर रूप और अद्भुत सामर्थ्यको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ—

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय।
सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुम। स तत् एव निववृते,
नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति॥
(के० उ० ३।६)

अर्थात् उस यक्षने (भगवान्‌ने) अग्निदेवके सामने एक तिनका रखकर कहा—'आप इस सूखे तृणको जला दीजिये तो आपकी शक्ति देखें।' अग्निदेव उस तृणके समीप पहुँचे और पूरी शक्ति लगायी, किन्तु। उसे जला न सके। तब लज्जित होकर वहाँसे लौटकर देवताओंसे बोले—'मैं तो भलीभाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है?'

वेदका गूढ़ तात्पर्य यह है कि भगवान् अचिन्त्य सुन्दर पुरुष हैं तथा वे स्वेच्छासे अवतीर्ण होकर जीवोंके साथ लीला करते हैं।'

व्रजनाथ—'भगवान्‌को रस-समुद्र कहा गया है। क्या वेदोंमें कहीं ऐसा वर्णन आया है?'

बाबाजी—तैत्तिरीय उपनिषद्‌में ऐसा स्पष्ट वर्णन मिलता है—

'यद्वै तत् सुकृतम् रसो वै सः। रसं ह्येवायं
लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्।
यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति॥(क)
(तै० उ० २।७)

व्रजनाथ—'यदि वे रस-स्वरूप है, तब उन्हें बहिर्मुख लोग देख क्यों नहीं पाते?'

बाबाजी—'मायाबद्ध जीवकी स्थिति दो प्रकार की होती है। पराक् स्थिति और प्रत्यक् स्थिति। पराक् स्थितिमें अवस्थित जीव कृष्णसे विमुख होता है। अतएव वह कृष्णका सौन्दर्य देखनेमें असमर्थ होता है। वह केवल मायिक विषयोंका चिन्तन और दर्शन करता है। प्रत्यक् स्थितिमें अवस्थित जीव मायासे पराङ्मुख और कृष्णके प्रति उन्मुख होता है। अतः वह कृष्णको रस-स्वरूप दर्शन करनेमें समर्थ होता है कठोपनिषद्‌में कहा गया है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू-
स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥' (ख) (क्रमशः)

(क) (पूर्व मन्त्र में) जिसे सुकृत ब्रह्म कहा गया है, वे परब्रह्म परमात्मा ही रस-स्वरूप है। जीव इस रस-स्वरूप परब्रह्मको प्राप्त कर आनन्दित होता है। हृदयाकाशमें आनन्द-स्वरूप ब्रह्म नहीं रहते तो कौन जीवित रह सकता अर्थात् कौन जीवन धारण करनेमें समर्थ होता? परमात्मा ही जीवोंको आनन्द प्रदान करता है।

(ख) स्वयं प्रकट होनेवाले परमेश्वरने समस्त इन्द्रियोंको बाहरकी ओर जानेवाली बनाया है, इसलिये जीव इन्द्रियों द्वारा प्रायः बाहरकी वस्तुओंको ही देखता है, वह अपने हृदयमें अवस्थित भगवान्‌को नहीं देख पाता। कोई-कोई धीर व्यक्ति ही कृष्ण-प्रेम रूप अमरत्व पानेकी इच्छासे नेत्र आदि इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे लौटाकर प्रत्यक् आत्मा श्रीभगवान्‌को देख पाते हैं।